सुन्दर साहित्यमाला

१३

सम्पादक

रामलोचनशरण बिहारी

सुन्दर साहित्यमाला—१३

विभूति

[सोलह ललित कहानियाँ]

शिवपूजनसहाय

पुस्तक-भण्डार
लहेरियासराय और पटना
७)

प्रकाशक

पुस्तक-भंडार

लहेरियासराय

प्रथम संस्करण—संवत् १९७९

द्वितीय संस्करण—संवत् १९९१

तृतीय संस्करण—संवत् १९९८

मुद्रक

हनुमानप्रसाद

विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

लेखक का वक्तव्य

[नवीन संस्करण]

"I do not know what I may appear to the world, but to myself I seem to have been only like a boy playing on the seashore, and diverting myself in now and then finding a smooth pebble, or a prettier shell than ordinary, whilst the great *Ocean of Truth* lay all undiscovered before me."

—*Newton.*

* * * *

"Of all those arts in which the wise excel,
Nature's chief master-piece is Writing well."

—*Buckingham.*

१

हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषमं वामहस्तेन चाप
भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृत भ्रामयन्वाणमेकम्।
आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुः सूर्यकोटिप्रकाशो
वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः पातु मां वीर राम.॥

'**देहाती दुनिया**' नामक अपने उपन्यास के 'वक्तव्य' में मैंने लिखा था—"आज (संवत् १९८२) से चार वर्ष पहले मेरी लिखी दस कहानियों का एक संग्रह '**महिला-महत्त्व**' नाम से निकला था। उसे कलकत्ते के एक नौसिख प्रकाशक ने बड़ी सुन्दरता से छपाया था। पर उनसे उसके यथेष्ट प्रचार का प्रबंध न हो सका—साहित्य-प्रेमियों के बदले उसका रस कीड़ों ने खूब चूसा! ईश्वर की कृपा से गत वर्ष (संवत् १९८१ में) इस पुस्तक के प्रकाशक (**पुस्तक-भंडार**) ने बड़े उत्साह से उसके प्रकाशन का अधिकार और उसकी बची-खुची दो-चार सौ अच्छी प्रतियाँ खरीद लेने की उदारता दिखाई। अब शीघ्र ही उसका दूसरा संस्करण '**वीणा**' नाम से प्रकाशित होनेवाला है। कारण, मैंने उसके लिये पहले '**वीणा**' ही नाम चुना था; पर एक 'साहित्यिक' मित्र के आग्रह से मेरा वह चुनाव कायम न रहा, और '**महिला-महत्त्व**' नाम से ही पुस्तक प्रकाशित हुई।"

इसी बीच में कविवर पंडित सुमित्रानन्दन पन्त की सरस कविताओं का संग्रह 'वीणा' नाम से प्रकाशित हो गया। इसलिये अब मैंने इस

नवीन संस्करण का नाम 'विभूति' रख दिया है। प्रथम संस्करण में **दस** ही कहानियाँ थीं, इस नवीन संस्करण में **सोलह** हैं—छः कहानियाँ और सम्मिलित कर दी गई हैं।

२

पहले की दस कहानियों के विषय में, प्रथम संस्करण की भूमिका में, यह बताया जा चुका है कि वे किन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। इस नवीन संस्करण की छः कहानियाँ निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं—**साहित्य-समालोचक, उपन्यास-तरंग, सरोज, मारवाड़ी-अग्रवाल, मनोरमा, पाक्षिक जागरण।** मासिक 'उपन्यास-तरंग' (कलकत्ता) और पाक्षिक 'जागरण' (काशी) का सम्पादक मै ही था, अतएव मैंने 'तरंग' में बारहवीं कहानी 'विल्वपत्र' नाम से तथा 'जागरण' में सोलहवीं कहानी 'एकलव्य' नाम से लिखी थी।

प्रथम संस्करण की दस कहानियों का परिचय 'भूमिका' में दिया गया है; इस नवीन संस्करण की छः कहानियों का परिचय इस प्रकार है—

ग्यारहवीं कहानी कल्पना-प्रसूत है, पन्द्रहवीं ऐतिहासिक घटना के आधार पर लिखी गई है, और सोलहवीं 'आस्कर वाइल्ड' की एक कहानी का अनुवाद है। शेष तीन कहानियाँ सच्ची घटनाओं पर आश्रित हैं। इस प्रकार, **सोलह कहानियों में चार ऐतिहासिक, एक कल्पित, एक अनुवादित और दस सत्य-घटना मूलक हैं।** इसके अतिरिक्त, चौदह कहानियाँ मेरे असली नाम से पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं, केवल दो ही कहानियाँ कल्पित नाम से छपी हैं।

प्रथम संस्करण की सुन्दरता और सजावट मुझे पसन्द नहीं थी। इस संस्करण में सर्वत्र सादगी रक्खी गई है। प्रथम संस्करण में प्रकाशक ने असंख्य विराम-चिह्नों की भरमार करा दी थी; कुछ छूट और अशुद्धियाँ भी थीं। इस संस्करण में सबका यथासंभव परिष्कार कर दिया है। फिर भी यह सत्य है कि मनुष्य की कृति सर्वथा निर्दोष नहीं होती।

अब और अधिक क्या लिखूँ? इन कहानियों में कोई कला या चमत्कार नहीं है। इनमें से अधिकांश की रचना उस समय हुई थी, जिस समय हिन्दी-संसार में 'कला' का विशेष प्रवेश नहीं हुआ था। कहानियों का रचना-काल सूची में दे दिया है। ये केवल आत्मतुष्टि के लिये लिखी गई थीं। यदि इनसे पाठकों को भी कुछ मनस्तोष प्राप्त होगा, तो मैं समझूँगा कि 'एक पथ दो काज' सिद्ध हुआ।

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय
श्रावणी पूर्णिमा, संवत् १९९१

विनयावनत
शिवपूजनसहाय

भूमिका [प्रथम संस्करण]

समर्पण [सचित्र]

*   *   *

सोलह कहानियाँ

भूमिका

[प्रथम संस्करण]

"एतावत्सरसिजकुड्मलस्य कृत्यं भित्वाम्भः सरसि विनिर्गमो बहिर्यत्।
आमोदो विकसनमिन्दिरानिवासस्तत्सर्वं दिनकरकृत्यमामनन्ति ॥"

"अर्थात्, कमल-कलिका का तो इतना ही काम है कि सरोवर के जल को भेद कर बाहर निकल आवे। उसमें मधुर मकरन्द लाना, उसे विकसित करना, उसमें लक्ष्मी का निवास कराना, यह सब सूर्य का काम है। बुद्धिमान् जन यह मानते हैं।"

१

अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा ।
यद्वामांके स्थिता सीता मेघस्येव तडिल्लता ॥

एक मसल मशहूर है कि 'बिच्छू का मंत्र न जाने, साँप के बिल में हाथ डाले'। यह पुस्तक लिखकर मैंने उक्त कहावत को चरितार्थ कर दिया है। आख्यायिका लिखना कठिन काम है, और अत्यन्त कठिन काम है। मेरे जैसे नौ-सिखुवे लेखक के लिये तो वह कठिन ही नहीं, असंभव भी है। किन्तु अपनी अयोग्यता का ध्यान रखते हुए भी मैंने अनधिकार-चेष्टा करने का जो निन्दनीय दुस्साहस किया है, वह यद्यपि अमार्जनीय है; तथापि कृपालु पाठकों से सविनय क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। जान-बूझकर अपराध करनेवाले की निर्लज्जतापूर्ण क्षमा-प्रार्थना, घृणा की हँसी हँसकर, उदारता के साथ, सहृदय सज्जन स्वीकार कर लेते हैं।

"एतहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुवर देहु 'तुलसिहिं' छोरि ॥"

२

जो **दस आख्यायिकाएँ** इस पुस्तक में संग्रह की गई हैं, वे आज से कई वर्ष पहले **साहित्य-पत्रिका, भास्कर, लक्ष्मी, कायस्थ-महिला-हितैषी** और **आर्य्यमहिला** में प्रकाशित हो चुकी हैं। किन्तु जिस रूप में वे प्रकाशित हुई थीं, वह रूप अब नहीं रहा। संग्रह करने से पूर्व मैंने यथाशक्ति उनका सम्पादन कर दिया है। मैंने भावों में भी भव्यता और नव्यता लाने की चेष्टा की है तथा भाषा को भी परिमार्जित एवं परिष्कृत बनाने का प्रयत्न किया है। हाँ, सम्पादन करते समय मैंने एक अक्षम्य अपराध अवश्य किया है। वह यह है कि अपनी आरम्भिक या स्वाभाविक रचना-शैली को मैंने विशेष छिन्न-भिन्न नहीं किया है। उस

पर कुठार-प्रहार करने के लिये मेरा हृदय उद्यत नहीं हुआ। यदि कोई सुयोग्य विद्वान् इस पुस्तक का सम्पादन करता तो इसके अनेक दोष दूर हो गये होते; पर मेरे सम्पादन से पूर्व यह पुस्तक इस योग्य नहीं थी कि मै किसी मर्मज्ञ विज्ञ व्यक्ति के पास, व्यर्थ ही उसका अमूल्य समय नष्ट करने के लिये, भेजकर संशोधनार्थ प्रार्थना करता।

सम्पादित होकर जब यह पुस्तक मुद्रित हो गई, तब मेरा विचार हुआ था कि इसकी भूमिका किसी विद्वान् से लिखवाऊँ; पर मुझसे वैसी प्रगल्भता भी न हो सकी। हाँ, अब यह पुस्तक जब किसी-न-किसी रूप मे प्रकाशित हो गई तब, संभव है, कभी सौभाग्यवश विद्वानों की दृष्टि इस पर पड़ जाय। उस समय मुझपर असीम दया करके यदि अकारण-कृपालु विद्वान् मुझे पुस्तक-गत दोषो की सूचना के साथ-ही-साथ संशोधन-सम्बन्धी सत्परामर्श भी देने की उदारता प्रकट करेंगे, तो मै अपना अहो-भाग्य समझूँगा।

बड़ी सावधानता से प्रूफ-संशोधन करने पर भी दृष्टिदोष से इस पुस्तक मे यत्र-तत्र छापे की—एक-दो जगह बड़ी भ्रमात्मक—भूले रह गई हैं। उन भूलो के लिये तो मै ही दोषी हूँ। उनके अतिरिक्त जो भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ या भाव सम्बन्धी अप्राकृतिक बातें हैं, उनके लिये भी मैं ही दंडार्ह हूँ।

यद्यपि मैने इस पुस्तक का सविधि सम्पादन करने में घोर परिश्रम किया है, तथापि अपने ही दोषो का आप ही सुधार कर लेना मेरे जैसे अल्पज्ञों का काम नहीं है। जो भूल करने का आदी है, वह भूल का समुचित सुधार नहीं कर सकता। इस लिये मै कदापि यह कहने की धृष्टता नहीं कर सकता कि मेरे सविधि सम्पादन कर देने से यह पुस्तक सर्वथा निर्दोष हो गई है।

"मल किमि छूट मलहिं के धोये ?
घृत कि पाव कोउ बारि बिलोये ?"

अस्तु। इस पुस्तक से पहले मेरी लिखी हुई और मेरे द्वारा सम्पादित होकर चार-पाँच पुस्तकें—**बिहार का बिहार, हिन्दी ट्रांसलेशन, प्रेमकली, त्रिवेणी, सेवाधर्म, प्रेमपुष्पाञ्जलि** आदि—प्रकाशित हो चुकी हैं ; पर उनसे कहीं अधिक मेरी ममता इसी पुस्तक पर है; क्योंकि इसमें मेरी उन आरम्भिक रचनाओं का सग्रह है, जिन्हें आज से कई वर्ष पहले मैंने लिखा था और बड़े शौक से लिखा था। **दसों आख्यायिकाएँ सच्ची घटनाओं के आधार पर लिखी गई थीं।** आरम्भ में जो तीन आख्यायिकाएँ हैं उनके लिये 'टाड साहब के राजस्थान इतिहास' से मसाला लिया था, और शेष सात जनश्रुत घटनाओं के आधार पर रची गई थी। अतएव आरम्भ की तीन तो ऐतिहासिक हैं और शेष सात सामाजिक। परन्तु चौथी, नवीं और अन्तिम (दसवीं) आख्यायिका को मैंने कानो-सुनी घटना के अनुरूप ही लिख मारा है। मालूम नहीं, उन्हें, कहाँतक स्वाभाविक या शिक्षाप्रद या मनोरंजक बना सका हूँ।

यद्यपि यह पुस्तक मेरी मौलिक रचना है, तथापि इसकी मौलिकता मेरी अपनी सम्पत्ति नहीं। सच पूछिये तो थोड़ा-बहुत अध्ययन और मनन करके मैंने जो कुछ सीखा है और मकरन्द-संग्रहकारिणी मधुमक्षिका की तरह जो कुछ सञ्चय किया है, उसे ही, साहित्य-रसिकों के रसास्वादन—मनोरञ्जन—के लिये, इसमें रख दिया है। 'रखने का ढङ्ग मात्र' मेरा है। अब उसे आप मेरी मौलिकता कहिये या साहित्यिक डाका तक कह डालिये—आपको सब-कुछ कहने का अधिकार है।

सहृदय समालोचक महाशयों से मैं कुछ भी कहने योग्य नहीं हूँ। विश्वास है कि वे इसे आद्यन्त पढ़ लेने के बाद अपना स्वतंत्र विचार प्रकट करेंगे।

उसे जानते हैं बड़ा अपना दुश्मन।
हमारे करे ऐब जो हम पर रौशन॥
नसीहत से नफ़रत है नासिह से अनबन।
समझते हैं हम रहनुमाओं को रहज़न॥
यही ऐब है सबको खाया है जिसने।
हमें नाव भरकर डुबोया है जिसने॥

यदि इस पुस्तक को हिन्दी-प्रेमियों ने पसन्द किया तो मै अपने अन्य सभी लेखों का संग्रह पुनः सम्पादित कर प्रकाशित करूँगा। यदि यह पुस्तक किसी मर्ज की दवा न हुई, तो फिर जैसा विचार होगा वैसा किया जायगा। ऐतिहासिक और सामाजिक गल्पों की एक दूसरी पुस्तक मै फिर लिख रहा हूँ। यदि इस तुच्छ रचना को अपनाकर हिन्दी-ससार ने मुझे उत्साहित किया, तो वह पुस्तक भी शीघ्र ही प्रकाशित करूँगा।

इस पुस्तक मे, मैने जिन कवियों की कविताएँ उद्धृत की हैं, उनका मै चिरऋणी रहूँगा, क्योंकि उनकी कविताएँ यदि न मिलतीं, तो मेरी दुर्बल भाषा एव अपरिपक्व रचनाशैली उनके द्वारा प्रकट किये गये प्रसंगानुकूल भावों को व्यक्त ही नहीं कर सकतीं। अतएव, उनको कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

"तुम्हरी कृपा सुलभ सब मोरे।
सियनि सुहावनि टाट पटोरे॥"

बालकृष्ण प्रेस
१३, शंकरघोष लेन; कलकत्ता
संवत् १९७९

विनीत
शिवपूजनसहाय
('मारवाड़ी-सुधार'-सम्पादक)

मुंडमाल

हाथ में दे शूल निज पति के जहाँ पत्नी अहा !
बोलती यों विधु-वदन से वीर-वचनामृत बहा—
"भीरु अबला की विनय यह नाथ ! भूल न जाइयो,
शत्रुकुल को पीठ दिखला, लौट गेह न आइयो।"

—लोचनप्रसाद पांडेय

❀ ❀ ❀ ❀

We are bravemen's mothers, and brave-men's wives;
We are ready to do and dare.
We are ready to man your walls with our lives.
And string your bows with our hairs.

—*Wives of the Spartans.*

१

आज उदयपुर के चौक में चारों ओर बड़ी चहल-पहल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ उठा है। मालूम होता है कि किसी ने यहाँ के कुँओं में उमंग की भंग घोल दी है। नवयुवकों की मूँछों में ऐंठ भरी हुई है, आँखों में ललाई छा गई है। सबकी पगड़ी पर देशानुराग की कलँगी लगी हुई है। हर तरफ से वीरता की ललकार सुन पड़ती है। बाँके-लड़ाके वीरों के कलेजे रण-भेरी सुनकर चौगुने होते जा रहे हैं। नगाड़ों से तो नाकों में दम हो चला है। उदयपुर की धरती धौंसे की धुधुकार से डगमग कर रही है। रण-रोष से भरे हुए घोड़े डंके की चोट पर उड़ रहे हैं। मतवाले हाथी हर ओर से, काले मेघ की तरह, उमड़े चले आते हैं। घंटों की आवाज से सारा नगर गूँज रहा है। शस्त्रों की झनकार और शंखों के शब्द से दसों दिशाएँ सरस-शब्दमयी हो रही हैं। बड़े अभिमान से फहराती हुई विजय-पताका राजपूतों की कीर्त्ति-लता-सी लहराती है। स्वच्छ आकाश के दर्पण में अपने मनोहर मुखड़े निहारनेवाले महलों की ऊँची-ऊँची अटारियों पर चारों ओर सुन्दरी-सुहागिनियाँ और कुमारी कन्याएँ भर-भर अंचल फूल लिये खड़ी हैं। सूरज की चमकीली किरणों की उज्ज्वल धारा से धोये हुए आकाश में चुभनेवाले कलश, महलों के मुँड़ेरों पर, मुस्कुरा रहे हैं। बन्दीवृन्द विशद विरुदावली बखानने में व्यस्त हैं।

२

महाराणा राजसिंह के समर्थ सरदार चूड़ावतजी आज औरंगजेब का दर्प-दलन करने और उसके अन्धाधुन्ध अन्धेर का उचित उत्तर देने जानेवाले हैं। यद्यपि उनकी अवस्था अभी अठारह वर्षों से अधिक नहीं है, तथापि जंगी जोश के मारे वे इतने फूल गये हैं कि कवच में नहीं अँटते। उनके हृदय में सामरिक उत्तेजना की लहर लहरा रही है। घोड़े पर सवार होने के लिये वे ज्योंही हाथ में लगाम थामकर उचकना चाहते हैं, त्योंही अनायास उनकी दृष्टि सामनेवाले महल की झँझरीदार खिड़की पर, जहाँ उनकी नवोढा पत्नी खड़ी है, जा पड़ती है।

३

हाड़ा-वंश की सुलक्षणा, सुशीला और सुन्दरी सुकुमारी कन्या से आपका ब्याह हुए दो-चार दिनों से अधिक नहीं हुआ होगा। अभी नवोढा रानी के हाथ का कंकण हाथ ही की शोभा बढ़ा रहा है। अभी कजरारी आँखें अपने ही रंग में रँगी हुई हैं। पीत-पुनीत चुनरी भी अभी धूमिल नहीं होने पाई है। सोहाग का सिन्दूर दुहराया भी नहीं गया है। फूलों की सेज को छोड़कर और कहीं गहनों की झनकार भी नहीं सुन पड़ी है। अभी पायल की रुन-झुन ने महल के एक कोने में ही बीन बजाई है। अभी घने पल्लवों की आड़ में ही कोयल कुहुकती है। अभी कमल-सरीखे कोमल हाथ पूजनीय चरणों पर चन्दन ही भर चढ़ा पाये हैं। अभी संकोच के सुनहरे सींकड़ में बँधे हुए नेत्र लाज ही

के लोभ में पड़े हुए हैं। अभी चाँद बादल ही के अन्दर छिपा हुआ है। किन्तु नहीं, आज तो उदयपुर की उदित-विदित शोभा देखने के लिये घन-पटल में से अभी-अभी वह प्रकट हुआ है।

४

चूड़ावतजी, हाथ में लगाम लिये ही, बादल के जाल से निकले हुए उस पूर्णचन्द्र पर टकटकी लगाये खड़े हैं। जालीदार खिड़की से छन-छनकर आनेवाली चाँद की चटकीली चाँदनी ने चूड़ावत-चकोर को आपे से बाहर कर दिया है! हाथ की लगाम हाथ ही में है, मन की लगाम खिड़की में है! नये प्रेम-पाश का प्रबल बन्धन प्रतिज्ञा-पालन का पुराना बन्धन ढीला कर रहा है! चूड़ावतजी का चित्त चंचल हो चला। वे चटपट चन्द्रभवन की ओर चल पड़े। वे यद्यपि चिन्ता में चूर हैं; पर चन्द्र-दर्शन की चोखी चाट लग रही है। वे संगमर्मरी सीढ़ियों के सहारे चन्द्र-भवन पर चढ़ चुके; पर जीभ का जकड़ जाना जी को जला रहा है।

५

हृदय-हारिणी हाड़ी-रानी भी, हिम्मत की हद करके, हल्की आवाज से, बोलीं—प्राणनाथ! मन मलिन क्यों है? मुखारविन्द मुर्झाया क्यों है? न तन मे तेज ही देखती हूँ, न शरीर में शान्ति ही! ऐसा क्यों? भला उत्साह की जगह उद्वेग का क्या काम है? उमंग मे उदासीनता कहाँ से चू पड़ी? क्या कुछ शोक-संवाद सुना है? जब कि सभी सामन्त-सूरमा, संग्राम के

लिये, सज-धजकर आप ही की आज्ञा की आशा में अँटके हुए हैं, तब क्या कारण है कि आप व्यर्थ व्याकुल हो उठे हैं? उदयपुर के बाजे-गाजे के तुमुल शब्द से दिग्दिगन्त डोल रहा है! वीरों के हुंकार से कायरों के कलेजे भी कड़े हो रहे हैं। भला, ऐसे अवसर पर आपका चेहरा क्यों उतरा हुआ है? लड़ाई की ललकार सुनकर लँगड़े-लूलो को भी लड़ने-भिड़ने की लालसा लग जाती है; फिर आप तो क्षात्र तेज से भरे हुए क्षत्रिय हैं। प्राणनाथ! शूरों को शिथिलता नहीं शोभती। क्षत्रिय का छोटा-मोटा छोकरा भी क्षण-भर में शत्रुओं को छील-छालकर छुट्टी कर देता है; परन्तु आप प्रसिद्ध पराक्रमी होकर पस्त क्यों पड़ गये?

चूड़ावतजी चन्द्रमा में चपला की-सी चमक-दमक देख चकित होकर बोले—"प्राणप्यारी! रूपनगर के राठौर-वंश की राजकुमारी को दिल्ली का बादशाह बलात्कार से ब्याहने आ रहा है। इसके पहले ही वह राज्य कन्या हमारे माननीय राणा-बहादुर को वर चुकी है। कल पौ फूटते ही राणाजी रूपनगर की राह लेंगे। हम बीच ही में बादशाह की राह रोकने के लिये रण-यात्रा कर रहे हैं। शूर-सामन्तों की सैकड़ों सजीली सेनाएँ साथ में हैं सही; परन्तु हम लड़ाई से अपने लौटने का लक्षण नहीं देख रहे हैं। फिर कभी भर-नजर तुम्हारे चन्द्र-वदन को देख पाने की आशा नहीं है। इस बार घनघोर युद्ध छिड़ेगा। हमलोग मन मनाकर जी-जान से लड़ेंगे। हजारों हमले हड़प जायँगे। समुद्र-सी सेना भी मथ डालेंगे। हिम्मत हर्गिज न हारेंगे। फौलाद-सी फौज को भी फौरन् फाड़ डालेंगे। हिम्मत तो हजारगुनी है;

मगर मुग़लों की मुठभेड़ में महज़ मुट्ठी-भर मेवाड़ी वीर क्या कर सकेंगे ? तो भी हमारे ढलैत, कमनैत और बानैत ढाढ़स बाँध-कर डट जायँगे। हम सत्य की रक्षा के लिये पुर्जे-पुर्जे कट जायँगे। प्राणेश्वरी ! किन्तु हमको केवल तुम्हारी ही चिन्ता बेढब सता रही है। अभी चार ही दिन हुए कि तुम-सी सुहागिन दुलहिन हमारे हृदय में उजेला करने आई है। अभी किसी दिन तुम्हें इस तुच्छ संसार की क्षणिक छाया मे विश्राम करने का भी अवसर नहीं मिला है ! क़िस्मत की करामात है, एक ही गोटी में सारा खेल मात है ! किसे मालूम था कि एक तुम-सी अनूप-रूपा कोमलाङ्गी के भाग्य में ऐसा भयंकर लेख होगा ! अचानक रंग में भंग होने की आशा कभी सपने में भी न थी ! किन्तु ऐसे ही अवसरो पर हम क्षत्रियों की परीक्षा हुआ करती है। संसार के सारे सुखो की तो बात ही क्या, प्राणों की भी आहुति देकर क्षत्रियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है।"

हाड़ी-रानी, हृदय पर हाथ धरकर, बोली—"प्राणनाथ ! सत्य और न्याय की रक्षा के लिये लड़ने जाने के समय सहज-सुलभ सांसारिक सुखो की बुरी वासना को मन में घर करने देना आपके समान प्रतापी क्षत्रिय-कुमार का काम नहीं है। आप आपात-मनोहर सुख के फन्दे में फँसकर अपना जातीय कर्त्तव्य मत भूलिये। सब प्रकार की वासनाओ और व्यसनों से विरक्त होकर इस समय केवल वीरत्व धारण कीजिये। मेरा मोह-छोह छोड़ दीजिये। भारत की महिलाएँ स्वार्थ के लिये सत्य का संहार करना नहीं चाहतीं। आर्य-महिलाओं के लिये समस्त संसार की सारी सम्पत्तियों से बढ़कर—

'सतीत्व ही अमूल्य धन है !'

जिस दिन मेरे तुच्छ सांसारिक सुखों की भोग-लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व-रत्न लुट जायगा, उसी दिन मेरा जातीय गौरव अरवली-शिखर के ऊँचे मस्तक से गिरकर चकनाचूर हो जायगा। यदि नव विवाहिता उर्मिला देवी वीर-शिरोमणि लक्ष्मण को सांसारिक सुखोपभोग के लिये कर्त्तव्य-पालन से विमुख कर दिये होतीं, तो क्या कभी लखनलाल को अक्षय्य यश लूटने का अवसर मिलता ? वीर-बधूटी उत्तरा देवी यदि अभिमन्यु को भोग-विलास के भयंकर बन्धन में जकड़ दिये होतीं, तो क्या वे वीर-दुर्लभ गति को पाकर भारतीय क्षत्रिय-नन्दनों में अग्रगण्य होते ? मैं समझती हूँ कि यदि तारा की बात मानकर बालि भी, घर के कोने में मुँह छिपाकर, डरपोक-जैसा छिपा हुआ रह गया होता, तो उसे वैसी पवित्र मृत्यु कदापि नसीब न होती। सती-शिरोमणि सीता देवी की सतीत्व-रक्षा के लिये जरा-जर्जर जटायु ने अपनी जान तक गँवाई जरूर; लेकिन उसने जो कीर्त्ति कमाई और बधाई पाई, सो आज तक किसी कवि की कल्पना में भी नहीं समाई। वीरों का यह रक्त-मांस का शरीर अमर नहीं होता, बल्कि उनका उज्ज्वल-यशोरूपी शरीर ही अमर होता है। विजय-कीर्त्ति ही उनकी अभीष्टदायिनी कल्पलतिका है। दुष्ट शत्रु का रक्त ही उनके लिये शुद्ध गंगाजल से भी बढ़कर है। सतीत्व के अस्तित्व के लिये रण-भूमि में व्रजमंडल की-सी होली मचानेवाली खड्ग-देवी ही उनकी सती सहगामिनी है। आप सच्चे राजपूत वीर हैं; इसलिये सोत्साह जाइये और जाकर एकाग्र मन से अपना कर्त्तव्य-पालन कीजिये।

मैं भी यदि सच्ची राजपूत-कन्या हूँगी, तो शीघ्र ही आपसे स्वर्ग मे जा मिलूँगी। अब विशेष विलम्ब करने का समय नहीं है।"

चूड़ावतजी का चित्त हाड़ी-रानी के हृदय-रूपी हीरे को परख-कर पुलकित हो उठा। प्रफुल्लित मन से चूडावतजी ने रानी को बार-बार गले से लगाया। मानों वे उच्च भावों से भरे हुए हाडी-रानी के हृदय-पारस के स्पर्श से अपना लौह-कर्कश हृदय सुवर्ण-मय बना रहे हों। सचमुच ऐसे ही हृदयों के आलिङ्गन से मिट्टी की काया भी कचन की हो जाती है। चूड़ावतजी आप-से-आप कह उठे—"धन्य देवि! तुम्हारे विराजने के लिये वस्तुतः हमारे हृदय में बहुत ही ऊँचा सिंहासन है। अच्छा, अब हम मरकर अमर होने जाते हैं। देखना, प्यारी! कहीं ऐसा न हो कि—" (कंठ गद्गद हो गया!)

रानी ने फिर उन्हे आलिङ्गित करके कहा—"प्राणप्यारे! इतना अवश्य याद रखिये कि छोटा बच्चा चाहे आसमान छू ले, सीपी में सम्भवतः समुद्र समा जाय, हिमालय हिल जाय तो हिल जाय; पर भारत की सती देवियाँ अपने प्रण से तनिक भी नहीं डिग सकतीं।"

चूड़ावतजी प्रेम-भरी नजरों से एकटक रानी की ओर देखते-देखते सीढ़ी से उतर पड़े। रानी सतृष्ण नेत्रों से ताकती रह गईं।

६

चूड़ावतजी घोड़े पर सवार हो रहे हैं। डंके की आवाज घनी होती जा रही है। घोड़े फड़क-फड़ककर अड़ रहे हैं। चूड़ावतजी का

प्रशस्त ललाट अभीतक चिन्ता की रेखाओं से कुंचित है। रतनारे लोचन-ललाम रण-रस में पगे हुए हैं।

उधर रानी विचार कर रही हैं—"मेरे प्राणेश्वर का मन मुझमें ही यदि लगा रहेगा, तो विजय-लक्ष्मी किसी प्रकार उनके गले में जयमाल नहीं डालेगी। उन्हें मेरे सतीत्व पर संकट आने का भय है। कुछ अंशो में यह स्वाभाविक भी है।"

इसी विचार-तरंग में रानी डूबती-उतराती हैं। तबतक चूड़ावतजी का अन्तिम संवाद लेकर आया हुआ एक प्रिय सेवक विनम्र भाव से कह उठता है—"चूड़ावतजी चिह्न चाहते हैं—दृढ आशा और अटल विश्वास का। सन्तोष होने योग्य कोई अपनी प्यारी वस्तु दीजिये। उन्होंने कहा है, 'तुम्हारी ही आत्मा हमारे शरीर में बैठकर इसे रणभूमि की ओर लिये जा रही है; हम अपनी आत्मा तुम्हारे शरीर में छोड़कर जा रहे हैं'।"

स्नेह-सूचक संवाद सुनकर रानी अपने मन में विचार रही हैं—"प्राणेश्वर का ध्यान जबतक इस तुच्छ शरीर की ओर लगा रहेगा, तबतक निश्चय ही वे कृतकार्य नहीं होंगे।" इतना सोचकर बोलीं—"अच्छा, खड़ा रह, मेरा सिर लिये जा।"

जबतक सेवक 'हाँ! हाँ!' कहकर चिल्ला उठता है, तबतक दाहिने हाथ में नंगी तलवार और बायें हाथ में लच्छेदार केशोवाला मुंड लिये हुए रानी का धड़, विलासमन्दिर के संगमर्मरी फर्श को सती-रक्त से सींचकर पवित्र करता हुआ, धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा!

बेचारे भय-चकित सेवक ने यह 'दृढ आशा और अटल विश्वास का चिह्न' काँपते हुए हाथों से ले जाकर चूड़ावतजी को दे

दिया। चूड़ावतजी प्रेम से पागल हो उठे। वे अपूर्व आनन्द में मस्त होकर ऐसे फूल गये कि कवच की कड़ियाँ धड़ाधड़ कड़क उठीं।

सुगन्धों से सींचे हुए मुलायम बालों के गुच्छों को दो हिस्सों में चीरकर चूड़ावतजी ने, उस सौभाग्य-सिन्दूर से भरे हुए सुन्दर शीश को, गले मे लटका लिया। मालूम हुआ, मानो स्वयं भगवान् रुद्रदेव भीषण भेष धारण कर शत्रु का नाश करने जा रहे हैं। सबको भ्रम हो उठा कि गले में काले नाग लिपट रहे हैं या लम्बी लम्बी सटकार लटें हैं। अटारियों पर से सुन्दरियों ने भर-भर अंजली फूलों की वर्षा की। मानों स्वर्ग की मानिनी अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि की। बाजे-गाजे के शब्दों के साथ घहराता हुआ, आकाश फाड़नेवाला, एक गंभीर स्वर चारों ओर से गूँज उठा—

'धन्य मुंडमाल !!!'

सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा

वीरभूमि मेवाड़ आर्य-गौरव-लीलास्थल,
अतुल जहाँ के शौर्य, जाति-अभिमान, वीर्य, बल !
है सतीत्व सद्धर्म का जो पवित्र आगार,
गाता जिसका सुयश है नित सारा संसार;
अमित आनन्द से !

❀ ❀ ❀ ❀

शुचि स्वदेश-वात्सल्य, सत्य-प्रियता, सहिष्णुता,
आत्मत्याग, श्रम-शक्ति, समर-दृढता, रण-पटुता ।
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता अखंड,
करता है जिस भूमि की, उज्ज्वल भारत-खंड;
अखिल भूलोक में !

—लोचनप्रसाद पांडेय

जो प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के धैर्य्य-समुद्र से यशोरूपी अमृत-मथ निकालने में मथानी (मन्दराचल) बना था, जिसकी शिलाओं पर रगड़कर वीर-व्याघ्र राजपूतो ने अपनी तलवारों पर सान चढ़ाई थी, जिसकी गुहाएँ राजपूतो के कीर्त्तिदुन्दुभि-स्वरूप झरनों के कल-कल शब्द से गूँजती रहती हैं, उसी अरवली-गिरि की तलहटी में राठौरों की राजधानी 'रूपनगर' है। राजपूताने के उन्नत हृदय पर अरवली-पर्वत की बड़ी अद्भुत शोभा है। वह विशाल पर्वत राजपूताने के सैकत-समुद्र मे विकराल ग्राह की भाँति विराजमान है। उसी पर्वत के प्रशस्त अंचल पर रूप-नगर एक अमूल्य रत्न के समान जड़ा हुआ है। जिस समय आर्यावर्त्त के पवित्र मंडल पर मुग़ल-बादशाह औरंगजेब के राज्य का सिक्का जमा हुआ था, उस समय रूपनगर भी मुग़ल-सल्तनत के ही अन्दर था। राठौरो ने वंश-मर्य्यादा की छाती पर मूँग दलकर, अपनी तलवारो को देशाभिमान के खौलते हुए खून से बाहर निकालकर, खुशामद के ठंढे जल में डुबो दिया था। औरंगजेब ने उनकी वीरता पर गीला कम्बल डालकर उनके पैरों मे गुलामी की बेड़ी पहनाई थी। जिस समय राठौरों का हृदय कुल-कलंकिनी कायरता का अड्डा बना हुआ था, उसी समय रूपनगर के रमणीय राजमहल में रनिवास से अलग एकान्त स्थान में बैठी हुई राजकुमारी रूपवती गीता-पाठ किया करती थी—

"क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ ! नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप !"

राजकुमारी रूपवती, सुन्दरता के साँचे में ढली हुई सोने की सजीव सलोनी मूर्त्ति होने के कारण, 'प्रभावती' नाम से प्रसिद्ध थी। बाल-सूर्य की मीठी और ठढी किरणो की भाँति उसके नख-शिख-सुन्दर शरीर से तेज की स्निग्ध छटा छिटकती रहती थी। वह दूध और कपूर-सी उजली चाँदनी के अमृत-रस मे पगी हुई, कुमुदिनी-सी विकसित और भगवद्भक्ति के गाढ़े रंग में रँगी हुई कविता-सी सरल थी। वह अनन्यरूपा राज-कन्या स्वतन्त्रता-देवी की अनन्योपासना को प्रत्यक्ष मूर्त्ति-सी मालूम होती थी। जान पड़ता था, मानों राठौरों की गिरी दशा मे भो उनका गौरव बढ़ाने के लिये साक्षात् वीरता-देवी ने सौम्य रूप धारण करके अवतार लिया है। जहाँ वह रहती थी, वहाँ किसी दूसरे पुरुष अथवा कुलटा स्त्रियों की छाया तक नहीं जाने पाती थी। राजपूतों की कुलीन कन्याएँ आ-आकर उससे 'गीता' का उपदेश सुना करती थीं। जिस तरह निर्मल चन्द्रमा से अमृत बरसता है, उसी तरह प्रभावती के चन्द्रानन से उपदेशामृत बरसता था। उस अमृत ने अनेक राजपुत्रियों का हृदय सींचकर उनका नारी-जन्म सार्थक और नारी-जीवन धन्य बना दिया था। जिस समय प्रभावती अपने कोकिल-कंठ से सती-सीमन्तिनी सीता देवी, पति-प्रेम-परायणा शकुन्तला और सती-शृङ्गारभूता दमयन्ती आदि के अपूर्व पातिव्रत्य की सरस कथा कहने लग जाती थी, उस समय सुशीला राठौर-कन्याओं की बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू की धारा बह निकलती थी। कभी उनकी छाती भर आती थी,

कभी देह की सुध-बुध बिसर जाती थी। प्रभावती की वाणी गंगा की स्वच्छ धारा के समान पवित्र और बच्चों की मधुर हँसी के समान सरल थी। कड़वी वाणी तो सपने में भी उसकी जीभ को छू नहीं गई थी। वह जो कुछ बोलती थी, सबमें सत्यता के साथ-साथ सरसता भरी रहती थी। झूठ बोलने और बेकार बकवाद करने से वह मौन रहना ही अच्छा समझती थी। वह कोमल वचनों से भगवान् का गुण गाकर अपनी प्यारी सखी-सहेलियों को सुनाती रहती थी। प्रस्फुटित कमल-कलिका-सी युवावस्था भी उसके दिल में विवाह की लालसा पैदा नहीं कर सकी थी। चमेली और गुलाब को मात करनेवाली सुकुमारता भी उसे भोग-विलास की ओर नहीं झुका सकी थी। राजसी सुखों के साधनों से घिरी रहने पर भी वह संसार की कुवासनाओं से बिल्कुल अलग रहा करती थी; जैसे जल में रहने पर भी कमलिनी जल से जुदा रहती है।

नित्य प्रातःकाल उठकर वह सबसे पहले भारत की सती-साध्वी आर्यमहिलाओं के शुभ नाम याद किया करती थी। फिर अन्त में, हाथ जोड़कर, मन-ही-मन, परमेश्वर से प्रार्थना करती थी—"हे परमपिता! तूने ऐसे कुल में मेरा जन्म दिया है, जिसकी कन्याएँ प्राण देकर भी अपना पत-पानी बचाती हैं। जिस समय भारत की सती पुत्रियों का पद-पद पर व्रत-भंग किया जा रहा है, जिस जमाने में उनके सिर पर सदा सैकड़ों संकट सवार रहते हैं, जिस काल में ज़बरदस्ती वे विषय-विलासी यवनों की पाशविक वृत्ति की तृप्ति का साधन बना दी जाती हैं; उसी समय में, भगवन्! मुझे सुन्दरता की थाती सौंपकर ऐसे देश में भेजना

तुझे उचित नहीं था। अच्छा, तू जो कुछ करता है वह भलाई ही की नीयत से करता है। कुलाङ्गनाओं की लाज रखनेवाला केवल तू ही नज़र आता है। यह तेरी अबोध बालिका, सुन्दर रंग-रूप-गंध से भरा हुआ अपना यह जीवन-कुसुम, तेरे ही चरणों पर भक्तिपूर्वक अर्पित करती है। इस अपने सँवारे हुए फूल के लिये यदि तूने प्रेमी भ्रमर नहीं बनाया हो, तो निर्जन वन में खिलकर आप-ही-आप झर जानेवाले फूल की तरह, मेरे जीवन-कुसुम को भी, अनजान और अछूत ही रहने देकर, झर जाने देना; पर इसे किसी कुटिल कीट के हवाले हर्गिज न सौंपना।"

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव..." !

इतना कहते-कहते उसके जुड़े हुए हाथ शिथिल होकर छूट पड़ते थे और बन्द आँखों से मोतियों की तरह आँसू की बूँदें गिरने लगती थीं।

२

रूपनगर का रनिवास अपनी बग़ल की फुलवारी के सुगंधित फूलों से हरदम गमगमाया रहता था। उसी फुलवारी में खिलनेवाले सुन्दर फूलों की मीठी-मीठी हँसी को अपनी एक-एक मन्द मुस्कान से लज्जित करनेवाली प्रभावती उक्त रनिवास में रहा करती थी। फूलों की क्यारियाँ सींचना और क्षमा की भिक्षा माँगकर पुष्प-वृक्षों से पूजा के फूल उतारना प्रभावती का नित्य-नैमित्तिक नियम था। उन फूलों की सुगन्ध तो केवल रनिवास ही को आमोदित करती थी; पर उन्हें जीवन-दान देनेवाली प्रभावती के दिव्य रूप और अलौकिक गुणों की सुगन्ध ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठे

हुए औरंगजेब तक को पागल बना दिया था। एक स्वर्गीय फूल की भीनी-भीनी मॅहक ने म्लेच्छराज को इतना मतवाला बना दिया था कि वह रूपतृष्णा की तीव्र उत्तेजना से अत्यन्त व्याकुल हो उठा।

वह खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, बोलते-बतराते इसी सोच में रहने लगा कि "किस तरह उस बहिश्ती नूर से अपने दिल व दिमाग़ को रौशन करूँगा ? कैसे उसे अपनी नफ़्स-परवरी का सामान बना सकूँगा ? वह खुशी की रात कब इस शाही महल को आबाद करेगी ? किस वक़्त इस हिंदुस्तान के ताज में जड़े हुए बेश-कीमत लाल उस दिल-रुबा की क़दम-बोसी हासिल करेंगे ?" उस नारकी शाहंशाह के ओछे और गन्दे दिमाग़ में यह पाक खयाल कभी सपने में भी नहीं पैदा होता था कि भारत की पुत्रियों का हृदय स्वर्ग से भी सुन्दर, प्रजा-पालक राजाओं के यश से भी उज्ज्वल, सज्जनों की शुद्ध वाणी से भी कोमल, तपस्वी की चिन्ता से भी पवित्र, बच्चों के स्वभाव से भी सरल, कवियों की कल्पना से भी प्रबल और सच्चे भक्त की भावना से भी सरस होता है। वहाँ छल की छाया नहीं, लोभ की लीला नहीं, विलास की वासना नहीं। वहाँ तो बस शान्ति की तूती बोलती है, निष्कलंक प्रेम की वंशी बजती है, नित-नूतन भव्य भावों की सृष्टि और भक्ति-जनित आनन्द की वृष्टि होती है।

३

सन्ध्या हो चली थी। पास ही के पहाड़ी झरनों से दिन-भर खेलकर हवा रूपनगर की ओर लौट रही थी। चिड़ियों की चहचहाहट से झाड़ियाँ भी सजीव हो उठी थीं। अरवली की

ऊँची-ऊँची चोटियों ने सूरज की लाल-पीली किरणों का मुकुट पहन लिया था। जङ्गल की ओर से गायें भगी चली आती थीं। उनके पीछे-पीछे दो हजार मुग़ल घुड़सवार उन्हें बेतहाशा खदेड़े चले आते थे। डरी हुई गायों के हँकाड़ने और जंगी जोश से भरे हुए घोड़ों के हिनहिनाने से रूपनगर गूँज उठा! औरंगजेब ने रूप-नगर के सामन्त-राज, प्रभावती के पिता, के पास एक पत्र इन्हीं घुड़सवारों के हाथ भेजा था। अपने असीम गौरव से मोहित होने के कारण, घोर अहंकार में चूर होकर, उसने ललकारकर पत्र लिखा था। सामन्त-राज उस मदान्ध बादशाह का पत्र पढ़ते ही काँप उठे! रोंगटे क्या, सिर के बाल भी खड़े हो गये! सिर से पैर तक एक ख़ौफ़नाक बिजली दौड़ गई! मालूम हुआ कि कलेजे में किसी ने लाल (तप्त) लोहे की मोटी छड़ घुसेड़ दी। उनकी भय-जनित चिन्ता ने उनका वर्त्तमान घोर अन्धकारमय और भविष्य भयंकर ज्वालामय बना दिया! उन्हें इतना भी निश्चय करना पहाड़ हो गया कि अब क्या करना चाहिये! यह समाचार प्रभावती के कानों तक पहुँचा। पिता के पास जाते ही, उन्हे मौन देखकर, वह अथाह समुद्र में पड़ गई। हा! एक तो सामने उमड़ी हुई भादो की अपार नदी, दूसरे उसमें भारी बोझ से लदी हुई बिना मलाह की झाँझरी नैया, तीसरे तूफानी तरङ्गों का तांडव नृत्य! बस, केवल द्रुपददुलारी की लाज रखनेवाले का भरोसा!

† † † †

४

सामन्त-राज की चिन्ता, ग्लानि, अशान्ति, व्यग्रता, निराशा, घबराहट और शोकाकुल दशा देखकर प्रभावती अचेत हो गई। उसका उद्वेग उभड़ उठा। धैर्य की चट्टान, विपत्ति की अगाध लहरों में, डूब गई। आशा की लदी-लदाई नैया चट्टान से टकरा-कर मँझधार ही में चकनाचूर हो गई। किसी-किसी तरह सतीत्व-शक्ति के सेतु पर चढ़कर वह डूबते-डूबते बची। अपनी असहा-यावस्था देखकर उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसने सोचा—"अब शायद मेरा कोई सच्चा बन्धु नहीं है। पिताजी एक साधारण सरदार ही ठहरे; मारवाड़-नरेश क्रूरकर्मा औरंगज़ेब के चापलूस ही हैं। और-और राजपूत-वीर चापलूसी की पगड़ियाँ पहने हुए, दिल्ली-दरबार मे अकड़कर बैठे-बैठे, केवल मूँछें ऐंठनेवाले हैं! अब ऐसा बचा ही कौन है, जो ऐसे गाढ़े समय मे एक अबला की प्रतिष्ठा बचाने के लिये लोहा लेगा। कोई ऐसा धुरन्धर राजपूत-वीर आँखों तले नहीं पड़ता जो एक राजपूत-कन्या की सतीत्व-रक्षा के लिये, बादशाह के विरुद्ध, अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाले। अब तो चाहे जो हो, विष खाऊँगी, कलेजे में कटार भोंकूँगी, आग में जल मरूँगी, गल-फाँसी डालूँगी; पर जीते-जी इस शरीर पर म्लेच्छ-राज की अपवित्र दृष्टि भी न पड़ने दूँगी। भगवान् कृष्ण जिस प्रकार शिशुपाल के हाथ से रुक्मिणी की रक्षा कर चुके हैं, उसी प्रकार उन्हें मुझको भी बचाना ही पड़ेगा। जगज्जननी सीते! तूने जिस शक्ति के बल से, अगणित राक्षसो के बीच मे रहकर भी, अपना सतीत्व-व्रत-पालन किया था;

आज इस अपनी पुत्री को उसी शक्ति का दान देकर कृतार्थ कर। नहीं तो, तेरे आँसुओं से सींचा हुआ प्यारा सतीत्व-वृक्ष अब भारतभूमि से उखड़ा ही चाहता है!" सोचते-सोचते वह रो पड़ी।

५

"चित्तौर-चिन्तामणि! मैं राठौर-वंश की एक दीन कन्या हूँ। आप राणा-वंश के प्रतापशाली वीर, छत्रधारी क्षत्रियों के छत्रपति और मातृभूमि मेवाड़ के यशस्वी भक्त हैं। यदि आपके देखते-ही-देखते क्षात्र गौरव का सर्वनाश हो जाय, राजपूत-कन्याओं की लाज लुट जाय और तेजस्वी पूर्वजों के उज्ज्वल यश में धब्बा लग जाय, तो इससे बढ़कर अब अधिक लज्जा का विषय, आप-सरीखे प्रताप-कुलदीपक के लिये, और हो ही क्या सकता है? मैं आपके चरणों की शरण में आई हूँ। मेरी बाँह पकड़कर लाज रखिये। अपनी ओर देखकर मेरी ढिठाई क्षमा कीजिये। नीच कीचक के क्रूर हाथों से वीरपुङ्गव भीम और अभिमानी जयद्रथ के पंजे से दुर्द्धर्ष धनुर्द्धर अर्जुन ने जिस प्रकार अपनी प्यारी द्रौपदी को बचाया था, उसी प्रकार आप भी, म्लेच्छों के हाथ से, इस कुलवती की लाज बचाइये। हाय! देवताओं का पवित्र यज्ञ-भाग गर्दभ खाया चाहता है! मैं आपके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा सुन चुकी हूँ। आपके चरणों की चेरी बनने का हौसला है, हिम्मत नहीं। आलमगीरी अन्धेर ने आज आपके आगे आने का अवसर दिया है। नहीं तो, खून के चूसे जाने पर भी अपना शील-सङ्कोच न छोड़नेवाली राजपूत-कन्या, इस तरह अधीर और निराधार होकर, अपने सतीत्व-रत्न का पुण्यवान् ग्राहक नहीं ढूँढ़ती

फिरती ! जौहरी हीरे को तलाश में रहता है; पर हीरा भी अपने सच्चे पारखी की खोज करते-करते उसके पास तक पहुँच ही जाता है। इस समय यदि मैं आपसे लज्जा करती, तो मेरी लज्जा लुट जाती। लज्जा और भय छोड़कर, हिन्दुस्तान की सम्राज्ञी बनने से मुँह मोड़कर, दुनिया की मोह-माया का जाल तोड़कर, राजपूतों की कायरता का भंडा फोड़कर, भक्तिपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर, आज आपके सामने धर्म-रक्षा की भिक्षा माँगने आई हूँ। आपके चरणों पर तन, मन, प्राण, हृदय, सर्वस्व की भेंट चढ़ाती हूँ। चाहे आप इस दासी को अपनावें या पैरों से ठुकरावें। मैं तो आप ही की सेवा में जीवन बिताने का संकल्प कर चुकी। इस हृदय में अब आपके सिवा किसी और के लिये जगह नहीं रही। यदि आप शीघ्र ही इस अपने चरण-कमल की भ्रमरी की सुध न लेंगे, तो औरङ्गजेबी अत्याचार से अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये, यह आपकी किङ्करी अपने प्राणों को अग्निदेव को सौंप देगी। मानस-सरोवर में मोती चुगनेवाली, दूध और जल को विलग-बिलग करनेवाली तथा नये खिले हुए कमलों से खेलती रहनेवाली राजहंसनी क्या कभी हिंसासक्त बगले की सङ्गिनी हो सकती है ? हाय ! आपके जीते-जी एक राजपूत-कन्या को, दूध-दही और मेवा-मिसरी आदि अमृतोपम पवित्र भोजन छोड़-कर, अब क्या शराब-कबाब खाने के लिये विवश होना पड़ेगा ? एकाग्रचित्त से पति-सेवा करने का एकान्त सुख तिलांजलि देकर एक राजपूत-कन्या कैसे विषय-विलासिनी बनेगी ? केसर, कस्तूरी, कर्पूर और चन्दन की सात्विक सुगन्ध छोड़कर, मन में विकार पैदा करनेवाले इत्रों और फुलेलों को, एक हिन्दू-महिला कैसे छू

सकेगी ? मृदुल-मधुर हरित तृण की अभिलाषिणी मृगी क्या कभी अखाद्य मांसो की ज्योनार से जी सकती है ? चातकी तो स्वाती की एक ही बूँद से तृप्त होती है, सामने उमड़े हुए क्षार रत्नाकर की ओर कभी फूटी नजर से भी नही देखती। वसन्त-विलासिनी कोयल के लिये यदि आम की एक हरी-भरी डाली ही भर आबाद रहे, तो वह कल्पद्रुम का स्वप्न भी नही देखती। अजगरों का घमंड चूर करनेवाले मेघ-मत्त मयूरो के साथ नाचनेवाली मयूरी क्या श्मशान के गर्हणीय और गन्दे गीध से चोंच मिला सकती है ? जिस रावण के समान प्रतापी राजा आज तक ब्रह्मा से रचते नहीं बना, वह रावण भी अपने वैभवविलास की चमक-दमक दिखाकर सती सीता की आँखो में चकाचौंध नही पैदा कर सका। आप जैसे धर्म-मर्मज्ञ से कहाँ तक क्या-क्या कहूँ ? दिल्ली से 'डोले का फ़रमान' पाते ही आकस्मिक संकट से घबराकर मेरे क्रोधोन्मत्त पिताजी अपना समयानुकूल कर्त्तव्य नही निश्चित कर सकते। उनका शरीर अपमान की धधकती हुई आग में जल चुका है। अब उनके प्राण भी मुगलों की तलवारों की चिनगारियो में जलेंगे। हाय ! अपनी जान देकर भी वे मेरी जान नहीं बचा सकते। इसलिये अशरण-शरण अग्निदेव के अंक में विलीन होने को उद्यत यह दासी अपना वसन्त-सुन्दर शरीर और अमृत-मधुर हृदय आपके चरणो पर निछावर करती है। त्राहि माम् !"

† † † †

६

उदयपुर के रोबदार दरबार में राजस्थान-केसरी महाराणा-राजसिंह अपने जागीरदार चूड़ावत, झाला, राठौर आदि शूर-सामन्तों के साथ बैठे हुए थे। हर ओर शान्ति विराजती थी। सभासद् ऐसे शान्त भाव से बैठे थे कि उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से शौर्य-तेज बरसता था। गायकगण गुण-गाथा गा रहे थे। दरबार के पार्श्ववर्त्ती मंडप में वेद-पाठी ब्राह्मण हवन कर रहे थे। दिव्य हव्य की सुगन्ध हर तरफ फैल रही थी। सवा मन के सुनहरे शमादान पर, जलती हुई सुगन्धित धूप-बत्तियों के बीच में, लम्बी कपूरी-बत्ती जल रही थी। सब सभासदों के आगे उनकी तलवारें एक कतार में पड़ी थीं।

सबके देखते ही, मङ्गल-वाणी से शुभाशीर्वाद देता हुआ, एक तेजस्वी वृद्ध ब्राह्मण राणाजी के सामने आया। सुमनांजलि के साथ, प्रभावती का वही प्रेममय प्रार्थना-पत्र, ब्राह्मण-देवता ने, राणाजी की—भक्तिभावपूर्वक प्रणाम के हेतु जोड़ी गई—अंजली में, उनका कल्याण मनाते हुए, छोड़ दिया। राणाजी ने फूलों को माथे चढ़ाया। ब्राह्मण-देवता एक उच्च आसन पर बैठे। पत्र को, सबके सामने ही, खोलकर राणाजी स्वयं पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते आँखें उमड़ आईं। दाँतों ने ओठ चाँप लिया। भुजाएँ फड़कने लगीं। भौं का कमान जुट गया। अंगुलियों ने काँपते-काँपते वह पत्र नीचे रख दिया। चूड़ावत-सरदार ने, राणाजी से, एकाएक चिन्तित और उदास हो जाने का कारण पूछा। राणाजी ने शिथिल हाथों से वह पत्र चूड़ावत-सरदार की ओर धीरे से बढ़ा दिया।

चूड़ावतजी आँखें फाड़-फाड़कर पत्र पढ़ने लगे। प्रभावती की दयनीय दशा का चित्र उनकी आँखों में फिरने लगा। राजपूती जोश का खून आँखों में उबल आया। उनका आश्चर्य, क्रोध की मदिरा पीकर, आपे से बाहर हो गया। उन्होंने ओज-भरे शब्दों में कहा—"धर्मावतार ! आप इस तरह उदास मत हों। यह राठौर-कन्या जब आपको मन से वर चुकी तब इसकी रक्षा से विमुख होकर क्या आप क्षात्र धर्म को रसातल भेजेंगे ? जिस मेवाड़ की मान-मर्यादा बचाने के लिये, हमारी माताओं ने, अपनी गोद के लाखों लाल लुटा दिये हैं, उसी मेवाड़ की गौरवान्वित गद्दी को सनाथ करनेवाला, राणा हम्मीर और राणा साँगा तथा हिन्दू-कुल-सूर्य्य महाराणा प्रताप का सुयोग्य वंशधर, क्या राज्य-नाश के भय से, जङ्गलों में भटकते फिरने की शङ्का से, शरण में आई हुई एक अबला को आत्मघात करने का अवसर देगा ? यदि ऐसा होगा तो उसी दिन वीर-रक्ताभिषिक्त मेवाड़-भूमि रसातल में पैठ जायगी, सूर्य्य चक्कर खाकर डूब जायगा, भूमंडल भी—तूफान से घिरे हुए जहाज की तरह—डगमगा उठेगा, तारे एक दूसरे से टकराकर चूर्ण हो जायँगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर भूलोक को डुबो देगा, चाँद से चिनगारियाँ बरसने लगेंगी और अरवली का हृदय भीषण ज्वालामुखी के प्रस्फोट से एकाएक फट पड़ेगा। अपनी मातृभूमि की लाज रखने के लिये खून की नदियाँ बहानेवाले और कन्दराओं में रहकर कन्द-मूल के सहारे स्वतन्त्रता के दिन बितानेवाले माननीय महाराणा प्रताप के अन्न का पवित्र रक्त आज भी मेरी रगों में बह रहा है, अब भी मेरी नस-नस में वही वीरत्व की

बिजली दौड़ रही है; केवल आपके जीभ हिलाने की देर है। मैं चाहूँ तो अभी उस कन्या को आदरपूर्वक उदयपुर लिवा आऊँ और शत्रुओं की कटी लोथों से लड़ाई का मैदान पाटकर प्रलय मचा दूँ। कम-से-कम इस प्रतापी गद्दी की लाज रखने के लिये तो आपको अवश्य ही युद्ध की घोषणा करनी पड़ेगी। अब परमाराध्य भगवती रणचंडी शत्रुओं का रक्त-पान किये विना न मानेंगी।"

चूड़ावत-सरदार की वाणी सुनते ही इधर सभी शूर-सामन्त रण-रोष से मत्त हो उठे और उधर दिल्ली में राज-सिंहासन पर बैठे हुए मुग़ल बादशाह के सिर से ताज खिसककर गिरते-गिरते बच गया!

† † † †

७

इधर राणाजी अपने शरीर-रक्षकों, गिने-चुने नामी पहलवानों, रणधीर वीरों और अनेक मुठ-भेड़ लड़ाइयों में शत्रुओं के पैर उखाड़नेवाले लड़ाके घुड़सवारों को साथ लेकर शुभ मुहूर्त्त में रूपनगर की ओर चले। उधर चूड़ावतजी दल-बल और बाजे-गाजे के साथ, दिल्ली से रूपनगर की ओर उमड़ी आती हुई, मुगल-सेना की राह में काँटे बिछाने चले।*

रूपनगर से आगे बढ़ते ही, आगरे की ओर से आते हुए बादशाही लशकर को आहट पाकर, चूड़ावतजी ने राजपूतों की पचास हजार सेना को खूब सम्भलकर डट जाने के लिये

* इसी समय के दृश्य के आधार पर "मुंडमाल" की रचना हुई है!

उत्तेजित किया। सभी राजपूत-वीर मूँछों पर ताव दे, कमर कस-कर, तैयार हो गये। वे युद्ध के लिये सन्नद्ध हो ही रहे थे कि इतने ही में मुग़लों की सेना आ धमकी। हाथी पर बैठे-ही-बैठे बादशाह ने शत्रुओं से राह माँगी। किन्तु मेवाड़ की सेना में भला कौन ऐसा कायर कपूत राजपूत था, जो अपनी कुल लज्जा डुबो देने के लिये लहराते हुए समुद्र को आगे बढ़ने देता? लड़ाई छिड़ गई। मेवाड़ी और मुग़लानी सेना भिड़ गई। एक सती सुन्दरी का सत्य-व्रत अटल रखने के लिये राजपूतों ने अपना पवित्र रक्त मुग़लों के खून में मिल जाने दिया! तीन दिनों तक घमसान लड़ाई होती रही। चौथे दिन, मस्ताना घोड़ा छरकाते-फँदाते और मुग़ल-रिसालों की भीड़ चीरते हुए, चूड़ावतजी, बाद-शाह के हाथी पर बड़े वेग से टूट पड़े। उन्होंने बड़े जोश में आकर अपना भाला बादशाह की छाती में घुसेड़ना चाहा। घोड़ा भी आवेश-पूरित होकर, मदोन्मत्त मृगेन्द्र की भाँति, हाथी के मस्तक तक चढ़ गया। अपनी जान पर बेढब आफत आई देखकर, अन्यायी आलमगीर, दोनों भुजाएँ पसारकर बड़े ज़ोर से चीख़ उठा। हाथी भी चिंघाड़ मारकर भाग चला। मालूम हुआ, मानों बहुत दिनों की जमी हुई हिन्दू-प्रजा की आह, बादशाह का फौलादी फेफड़ा फाड़कर, आसमान में ग़ायब हो गई!

८

लड़ने-भिड़ने में बादशाह बीच ही में फँस गये। मुग़ल-सेना जी भरकर लड़ी; मगर मनोरथ छूँछे पड़ गये। 'मुंडमाल'

का तावीज़ बाँधे हुए चूड़ावतजी भी, अपनी स्वर्गीया धर्म-पत्नी से मिलने के लिये, चले गये ! परन्तु शत्रुओं के दाँत खट्टे करके अपना वचन पूरा कर गये। बादशाह आलमगीर को छठी का दूध याद पड़ा और प्रभावती भूल गई ! प्रभावती-परिणय की अभिलाषा आत्मग्लानि में परिणत हो गई। काम-लिप्सा को क्षोभ ने धर दबाया ! मुग़ल-सेना दिल्ली की ओर लौट चली। बादशाह वैसे ही श्रीहत हो गया जैसे अङ्गद का पैर न उठा सकने के कारण रावण लज्जित हुआ था। पाँच हज़ार राजपूत बड़े गर्व से रूपनगर की ओर चल पड़े। चलते समय उनलोगों ने चूड़ावत-सरदार की लोथ को अनेक बार आलिङ्गित किया। इतनी बड़ी विजय प्राप्त करके अन्ततोगत्वा उनलोगों ने उदयपुर जाने का ही निश्चय किया। उदयपुर की ओर आते समय उनके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते थे। उनके शरीर और शस्त्र शत्रु-रक्त-सिक्त थे। उसी भैरव भेष में वे लोग उदयपुर पहुँचे। विजयी वीरों के शुभागमन का संवाद सुनकर उदयपुर-निवासियों ने उनके स्वागत का विराट् आयोजन किया।

जय-घोष करते हुए राजपूत-वीरों ने जब नगर में प्रवेश किया, तब यह देखकर उनका आनन्द असीम हो उठा कि ऊँची अटारियों पर, हाथों में पुष्पमालाएँ लिये, सोल्लास मङ्गल-गान गाती हुई राजपूत-रमणियाँ खड़ी हैं। राजपथ पर अनवरत पुष्पवृष्टि के कारण फूलों के पाँवड़े बिछ गये हैं। चौक के सामने-वाले राजप्रासाद की एक पुष्प-पल्लवालंकृत खिड़की पर, मोती का झालरदार पर्दा हटाकर, कंचन के थाल मे सजी हुई आरती कर-कमल-युगल मे लिये, सौभाग्यवती रूपवती प्रभावती खड़ी

है। गान-वाद्य-निनाद और जयजयकार की गगन-भेदिनी ध्वनि आनन्द के वायुमंडल मे व्याप्त हो रही है। असंख्य आँखों ने देखा कि उसी वन्दनवार-शोभित खिड़की पर खड़े-खड़े महाराणा राजसिंह मुस्कुरा रहे हैं और उनके वाम भाग में सुशोभित है वही माङ्गल्यमयी—

'सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा' !

विष-पान

O, woman ! Lovely woman ! Nature made Thee
To temper man ! we had been brutes without you;
Angels are painted fair, to look like you
Ther's in you all that we believe of heaven.
Amazing brightness, purity and truth;
Eternal joy, and everlasting love.

—*Otway*.

❀ ❀ ❀ ❀

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।

—रघुवंश

१

"रे कुलाङ्गार ! नर-पिशाच ! तेरा मुँह देखने से भी महापाप होगा। क्या तू ही इस शीशोदिया-वंश में कलंक-टीका लगाने के लिये अपनी माता के यौवन-वन का कुठार होने को था ? निर्लज्ज ! चुल्लू-भर पानी में डूब मर। जी तो चाहता है कि तुझे ले जाकर अरवली की ऊँची चोटी पर से नीचे ढकेल दूँ। तेरे अधम शरीर में राजपूत का एक बूँद भी रक्त नहीं है। न जाने यह मेवाड़ की महिमामयी भूमि तेरी अपवित्र देह का असह्य भार कैसे वहन कर रही है ! मालूम होता है कि अब यह भी तेरे ही साथ-साथ रसातल के अन्धकारमय गर्भ में धँसना चाहती है। रे नृशंस ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो अभी यहाँ से मुँह काला कर। नहीं तो सत्य का पक्ष पालन करनेवाली यह मेरी तलवार तेरे-जैसे पुरुषाधम के कलेजे के नापाक खून से शीघ्र ही अपने क्रोध की भयङ्कर ज्वाला बुझायेगी। क्षत्रियों की मान-मर्यादा धूलि में मिलाकर, जातीयता की गरदन पर भोंड़ी छुरी चलाकर, सती-सुन्दरी वीर-पत्नियों के चरणतल से पवित्र रनिवास को निस्तेज बनाकर, किस लाभ की आशा से, इस अपयश की कालिमा से पुते हुए तुच्छ शरीर में, तू अपने मलिन प्राणों को पोसे हुए है ? क्षात्र धर्म की रक्षा के लिये तीव्र उत्तेजना देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण का यह गीता-वाक्य

"सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते"

जिस क्षत्रिय के हृदय-पट पर अंकित नहीं, उसे राजपूत कहलाने का कोई अधिकार नहीं। तेरे कलेजे मे अगर शत्रु की तलवार घुसेड़ी गई होती, तो आज इतने राजपूतों के नेत्रों से खून न टपकता। अपने विख्यात वंश की बहू-बेटियों पर विपत्ति का वज्र घहराते देखकर, यदि तू रनिवास को श्मशान के रूप में परिणत करके वीरतापूर्वक लड़ाई के मैदान में उतर गया होता और समर-यज्ञ मे अपने शरीर-शाकल्य को होम दिये होता, तो आज सभी राजपूत-वीरों के हृदय मे तेरे लिये बहुत ही ऊँचा स्थान होता। तू भी वीर-गति पाकर अपने पितरों का मुख उज्ज्वल कर दिये होता। जब तुझे शत्रुओं के हाथ से अपने प्राण और प्रतिष्ठा बचाने की इच्छा थी, तब तूने उस वीर-कन्या के शोणित से अपनी इस तलवार को क्यों नहीं पवित्र कर लिया? जिस विपत्ति की सम्भावना की आशंका-मात्र से तूने इस जघन्य पाप का भार अपने सिर पर उठाया है, तुझे धैर्य और साहस के साथ उस भावी विपत्ति की प्रतीक्षा करनी चाहिये थी और उसके उपस्थित होने पर वीरता-पूर्वक, आत्मोत्सर्ग द्वारा, उसका सामना करना उचित था। धिक्कार है कि भीरुता-राक्षसी के पंजे में फँसकर तू कर्त्तव्य-पथ से विचलित हुआ! अब तो कोटि कंठों से धिक्कार की ध्वनि सुनते हुए तुझे धरती में धँस जाना चाहिये। किन्तु, जब कर्त्तव्य-पालन से विमुख होनेवाला कृतघ्न मेवाड़-भूमि में पैर तक रखने का दावा नहीं कर सकता, तब भला यह वीरता की रंगस्थली और क्षत्रियत्व की धात्री मेवाड़-भूमि तेरे-जैसे पतितात्मा को अंक में धारण करने के लिये कैसे उत्कंठित होगी! हाय!

बाप्पा रावल के वंश का सर्वनाश अब निकट है! उस राजकुमारी के आदर्श आत्मत्याग से क्षत्राणियों का मस्तक तो अवश्य ही गर्वोन्नत हुआ है; पर राजपूत-वीरों के जात्यभिमान पर कलंक की छाप लग जाती है। उस कलक-कालिमा को समस्त भारत की पवित्र नदियों की जलराशि भी नहीं धो सकती।"

२

शक्तावत-सरदार संग्रामसिंह की उपर्युक्त ओजस्विनी वाणी सुनकर विश्वास-घाती अजितसिंह भय, शोक, लज्जा, पश्चात्ताप और पीड़ा से व्याकुल हो उठा। वह सिर नीचा करके भीतर-ही-भीतर मन मसोसकर रह गया। वह रह-रहकर, क्रोधान्ध विषधर की तरह, आह की फुफकार छोड़ने लगा। कभी तो वह दाँत पीसता, कभी ओठ चबाता, कभी हाथ मलता और कभी तमतमाकर तलवार पर हाथ ले जाता। उसके क्षुब्ध हृदय के अन्दर मनोविकारों में युद्ध ठन गया। उस युद्ध में क्रोध-महाराज विजयी हुए! क्रोध-विजित अजितसिंह अधीर होकर कह उठा—"हा दैव! यदि इस समय वह पाखंडी पठान अमीर खाँ कहीं मिल जाता तो मैं उसकी बोटी-बोटी काटकर कुत्तों को खिला देता।"

अजितसिंह की अमर्ष-पूर्ण वाणी सुनकर एक राजपूत-वीर-केसरी ने गरजकर कहा—"रे चांडाल! वेणु-वंश मे तू घमोय कैसे उत्पन्न हुआ? उज्ज्वल कुल में धब्बा लगाकर सचाई का यह ढकोसला? यह ढोंग कहीं और जाकर दिखाना। यहाँ बहुत सफ़ाई मत दिखाना। जिस अमीर खाँ का अभी तू खून

चूस रहा था, उस दिन उसी ने तुझे अपने सामने से तिरस्कार-पूर्वक हटा दिया था। उस दिन उसके दुरदुराने पर यह तुम्हारी राजपूती शान की झूठी झलक कहाँ थी? यह आज की हेकड़ी उस दिन क्या भूल गई थी? एक पठान की घृणापूर्ण फटकार सुनकर—वीरों के बीच में डींग मारने का साहस करने के लिये—तेरी ही तरह क्या कोई राजपूत निर्लज्जतापूर्वक जी सकता है? सिंहनी के गर्भ से तू गीदड़ कैसे पैदा हुआ? यदि इस निन्दित शरीर से भी तुझे प्रेम है, तो अभी यहाँ से दूर हट जा।"

२

राणा भीमसिंह की परम सुन्दरी कन्या कृष्णाकुमारी के कवि-कल्पनातीत सौन्दर्य्य की ख्याति भारत-भर में फैली हुई थी। किशोरावस्था का समस्त सौन्दर्य्य उस ललना-ललाम के सुघटित अंग-प्रत्यंग पर मुग्ध होकर टिका हुआ था। वह अभिनव लावण्य-लतिका अपनी अशेष सुकुमारता और स्वर्गीय सौरभ के कारण 'राजस्थान-कमलिनी' नाम से विख्यात थी। वह सचमुच मेवाड़ की मूर्त्तिमती ममता थी। जातीयता की उस ज्योति में वासन्तक सुषमा-सी सुष्ठुता, ऊषा की शीतलता-सी मधुरिमा, शारदीय संध्या की निस्तब्धता-सी शान्ति और राका-रजनी की रमणीयता-सी मनोज्ञता थी। वह सत्य-सी दृढ़, सन्तोष-सी पवित्र, मणि-प्रभा-सी तेजोमयी, समुद्र-सी गम्भीर, हिमालय-सी विशाल-हृदया और वसुन्धरा-सी क्षमाशीला थी। उस वनिता-

वल्लरी के सौन्दर्य्य-वितान की सघन-सुशीतल छाया में विश्राम करने की अभिलाषा से, जयपुर-नरेश जगतसिंह ने, अपनी शक्ति का परिचय देने के लिये, उदयपुर में बहुत बड़ी वीर-वाहिनी भेजी थी। इधर नरवर के नरेश मानसिंह ने भी, जगतसिंह का मान-मर्दन करने के लिये, अपने पराक्रम का पूर्ण प्रभाव दिखाने की इच्छा से, उदयपुर में बड़ी भारी सेना पठाई थी। उदयपुर के राज-सदन-रूपी उदयाचल पर प्रकाशित होकर देश-भर में अमृत बरसानेवाले उस पूर्णचन्द्र के चकोर मानसिंह भी थे। 'मान' और 'जगत' की प्रतिद्वन्द्विता ने ही उस सुर-सुन्दरी को बाध्य किया कि वह इस पाप-परिताप-पूर्ण संसार को छोड़कर सती-लोक के लिये प्रस्थान करे! 'मान' और 'जगत' के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की प्रबल आँधी ने ही उस 'राजस्थान की कुसुमित कीर्त्तिलता' को उखाड़ डाला!

४

मेवाड़ के इतिहास में 'पुरुवत्सर' नामक स्थान का नाम उतनी ही प्रतिष्ठा के साथ स्मरण किया जाता है, जितनी महत्ता के साथ मुग़लों के इतिहास में 'पानीपत' का नाम और बंगाल के इतिहास में 'पलासी' का। एक नारी-रत्न के अप्रतिम रूप-लावण्य पर मोहित होनेवाले 'मान' और 'जगत' की सेनाओं का तुमुल संग्राम 'पुरुवत्सर' में ही हुआ था। उस समय पुरुवत्सर-क्षेत्र कुसुमित किंशुक-कानन की शोभा को प्राप्त हुआ था। दुर्दान्त राजपूत-योद्धाओं के रक्त से सिक्त होकर पुरुवत्सर-क्षेत्र अतिशय भीष्म हो उठा था। इसी रणभूमि में, मानी महीप

मानसिंह, अपनी सेना में आपस की फूट फैलते देखकर, अपनी ही तलवार से अपनी गरदन उतारने को उद्यत हुए थे। किन्तु मुट्ठी-भर सामन्त-सरदारों ने ही उनके जैसे वीर-वरिष्ठ को आत्म-हत्या करने से रोककर आक्रमणकारी शत्रुओं के दाँत खट्टे किये थे। जगतसिंह जान बचाने के लिये लड़ाई छोड़कर भाग खड़ा हुआ। उसकी अगणित सेना तितर-बितर और तहस-नहस हो गई। देव-बाला कृष्णा को प्राप्त करने की आशा-कली, उज्ज्वल प्रभात से पहले ही, टूट गई!

मानसिंह के भाग्यचक्र के एकाएक परिवर्त्तन से उनके शत्रुओं पर आतंक छा गया। किन्तु 'जगत' और 'मान' के बीच में धधकती हुई क्रोध एवं विरोध की अग्नि सहज मे ही शान्त न हुई। उसे बुझाने के लिए कृष्णाकुमारी के पवित्र रुधिर की ही आवश्यकता पड़ी!

५

अजितसिंह बड़े शान्त और सरल स्वभाव का था। उसकी शिष्टता और शालीनता की चारों ओर प्रशंसा होती थी। किन्तु अमीर खाँ की कुसंगति का ही ऐसा भीषण परिणाम हुआ कि उसे संग्रामसिंह के कटु वाक्यो और एक राजपूत-सभासद् के कुवाच्यों का शिकार बनना पड़ा।

उस दिन दुराकांक्षी अमीर खाँ ने भी स्पष्ट शब्दों में अजित-सिंह के सामने कह दिया था कि 'जबतक मेरे दिली दोस्त मानसिंह के साथ कृष्णा की शादी नहीं होगी, तबतक तमाम मुल्क में खलबली मचाने की कोशिश करता रहूँगा। मुमकिन

है कि उदयपुर का नामोनिशान तक मिट जाय। अगर राणा मेरी राय के मुताबिक काम न करेंगे, तो उनके ऊपर आफ़त का पहाड़ टूट पड़ेगा।'

सीधा-सादा बेचारा अजितसिंह एक गीदड़ की धमकी सुनकर काँप उठा था। उसके प्राण संज्ञा-हत हो गये! उदयपुर के भावी सर्वनाश की चिन्ता-चिता पर उसकी दीन बुद्धि जलने लगी। अपनी बहू-बेटियों की कुल-लज्जा पर भावी संकट आता देखकर वह मूर्च्छित हो गया!

राणा भीमसिंह ने अजित के स्याह चेहरे को देखकर पूछा—"तुम्हारे शरीर में आज इतनी उद्विग्नता क्यों है? तुम्हारा मुख कान्ति-हीन और शरीर तेजोहीन हो गया है। बात क्या है? डरे हुए-से क्यों मालूम होते हो? शोकमुद्रा बनाये क्यों बैठे हो? चिन्ता और पश्चात्ताप का कुछ कारण भी तो मालूम हो?"

अजितसिंह ने कातर स्वर में कहा—"शीघ्र ही उदयपुर पर वज्रपात होनेवाला है। अमीर ख़ाँ और मानसिंह उसपर भयंकरता से आक्रमण करनेवाले हैं। बड़ी भारी ग्लानि का विषय तो यह है कि उपद्रवी अत्याचारियों की इच्छा क्षत्राणियों के सतीत्व पर आघात पहुँचाने की है। यही सोच-सोचकर मैं व्याकुल हो रहा हूँ। अमीर ख़ाँ ने जोशीले शब्दों में अहङ्कार-पूर्वक कह रक्खा है कि 'कृष्णा की शादी मानसिंह से करने के लिये अगर राणा तैयार न होंगे, तो उदयपुर को उसी दिन उजड़ा हुआ देखेंगे'।"

भीमसिंह—"क्या उदयपुर का सर्वनाश इतना निकट है? यह सर्वस्व संहार की सम्भावना कैसी? मानसिंह ने भी, आज

से कुछ दिन पहले, यह संवाद भेजा था कि 'मेरी आशा और अभिलाषा भंग करके यदि 'जगत' के हाथ में मेवाड़ का अनमोल रत्न फेंका जायगा, तो मैं किसी को सुख की नींद न सोने दूँगा।' आज वह संवाद अचानक भयानक आपत्ति की सूचना देकर अतिशय भयंकर हो उठा! इधर अमीर ख़ाँ उदयपुर को उजाड़ने का मनसूबा बाँध रहा है, उधर मानसिंह उदयपुर का विध्वंस करने पर तुला हुआ है! हर तरफ़ से उदयपुर को श्मशान ही बनाने का उद्योग किया जा रहा है।"

अजितसिंह—"आप तो अभी उदयपुर को कुत्तों, गीधों और गीदड़ों का लीलास्थल होने की केवल आशंका ही कर रहे हैं और वहाँ जयपुर के समान सर्वाङ्गसुन्दर नगर श्मशान का स्वांग धारण कर चुका! यहाँ तक कि जोधपुर भी लूटपाट की चपेट में पड़कर अनेक उत्पातों का मुँह देख चुका। एकमात्र कृष्णा के कारण आज समस्त राजस्थान घोरतर अशान्ति का भंडार बना हुआ है।"

भीमसिंह—"क्या राजस्थान की कीर्त्तिवाटिका की कल्पलता को उखाड़नेवाले मतवाले हाथियों का अहंकार चूर्ण और कुम्भ विदीर्ण करनेवाला कोई मृगराज मेवाड़ में मौजूद नहीं है? क्या अब मेवाड़ में मुग़लों का मान-मर्दन करनेवाला कोई राजपूत नहीं रह गया? हाय! शत्रुओं के छक्के छुड़ानेवाले वीर कहाँ लुप्त हो गये? यदि आज दिल्लीश्वरों के दाँत रँगनेवाले हमारे पूर्वजों में से एक भी वीर-केशरी रहा होता तो 'राजस्थान-कमलिनी' को उन्मूलित करने के लिये आनेवाले मदान्ध मातङ्ग इधर झाँकने भी नहीं आते। जान पड़ता है कि इस ज़माने में अब सती देवियों का

पत-पानी रखनेवाला कोई माई का लाल इस अभागे देश की गोद मे रह न गया ! अनुमान से मालूम होता है कि राजस्थान की सौभाग्यलक्ष्मी 'कृष्णा' के रूप में ही अवतीर्ण हुई हैं। इस युग में स्वतन्त्रता की मणि भारत-जननी की गाँठ से छूटी जा रही है। पञ्जाब-केसरी रणजीत फिर भी उस स्वतन्त्रता-मणि को भारत-माता के अंचल के छोर में बाँध रहे हैं। किन्तु हाय ! स्वतन्त्रता की रङ्गशाला मेवाड़-भूमि में अब भीमान्धकार का राज्य होगा ! कृष्णा का जीवन-प्रदीप असमय ही निर्वाण को प्राप्त होनेवाला है। कृष्णा हमारी कन्या होकर अवतीर्ण नहीं हुई है, वल्कि भारत में क्षत्रियत्व की परीक्षा कराने और नारी-धर्म का महत्त्व प्रकट करने के लिये ही विधाता ने उसे भेजा है। जिस दिन कृष्णा की ज्योतिष्मती आत्मा ने हमारे राज-महल को अपने दिव्य प्रकाश-पुञ्ज से आलोकित किया, उसी दिन यदि हम जानते होते कि हमारे वंश के आलबाल में विष-वेलि उपज रही है, तो उसी समय उस क्षीण आलोक को अनन्त अन्धकार के गढे में डाल देते। अनिष्ट का अंकुर पनपते ही यदि नष्ट कर दिया गया होता, तो आज ऐसी विषम समस्या उप-स्थित न होती। शिशु-हत्या से बचने का फल यह हुआ कि आज नारी-हत्या के समान लोमहर्षण व्यापार करना पड़ता है ! किन्तु नारी-हत्या का यह घृणित कर्म हमारे वंश का यश-विध्वंस करनेवाला है ! ऐसे गर्हणीय कार्य का अवलम्बन करना हमारे लिये सर्वथा अनुचित है—

"विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।"

अजितसिंह—"एक कन्या की बलि चढ़ाने से ही यदि

मातृभूमि की रक्षा होती है, तो क्या मातृभूमि के चरणों पर उस कन्या-कुसुम को आप न चढ़ायँगे ? माता की जान बचाने के लिये पुत्री का बलिदान न करेंगे ? मातृभूमि की रक्षा के लिये एक कन्या के यदि प्राण ही जायँगे, तो इसमें चिन्ता का विषय ही क्या है ? आप उस कन्या से मातृभूमि-रक्षा का यह प्रस्ताव करें। यदि वह सचमुच राजपूत-कन्या होगी, तो मातृभूमि के चरणों में सहर्ष अपने प्राणों की भेंट चढ़ाकर आपका मुख उज्ज्वल और अपना नारी-जन्म सफल करेगी। अमीर ख़ाँ के परामर्श से मैंने यह उपाय सोच निकाला है। सम्प्रति यही एकमात्र ऐसा यत्न है, जिसे काम में लाकर उदयपुर को हमलोग शत्रुओं के जाल से निकाल सकते हैं। जबतक आप कृष्णा की हत्या के लिये, हृदय को वज्र बनाकर, उद्यत न होंगे, तबतक न तो आपके रनिवास की प्रतिष्ठा रहेगी, न राणा-कुल में कोई कुल-दीपक बचेगा और न मेवाड़ में राजपूतों के लिये कोई दो-चार बूँद आँसू बहानेवाला ही बचने पावेगा।"

इतना सुनते ही राणाजी कटे हुए सूखे वृक्ष की तरह ज़मीन पर गिर पड़े। मालूम हुआ, मानों किसी ने उनके विदीर्ण हृदय में हाथ डालकर उनका कलेजा ही मरोड़कर खींच लिया! उधर वात्सल्य-रस की पवित्र धारा से उनका अन्तःकरण परिप्लावित होने लगा और इधर उदयपुर की भावी शोचनीय अवस्था का चित्र आँखों के सामने भूलने लगा! अगत्या उन्होंने वात्सल्य-स्नेह की सुमिष्ट भावना को तिलाञ्जलि देकर कृष्णा को इस यन्त्रणामय संसार से विदा करना ही निश्चित किया। कुलघ्न अजित राणाजी का निश्चय सुनकर अत्यन्त प्रमुदित हुआ।

उसने अमीर खाँ और मानसिंह को राणाजी के इस निश्चय की सूचना दे दी !

हाय ! भीमसिंह यदि बाप्पा-रावल के अयोग्य वंशधर, शीशोदिया-वंश की अयोग्य सन्तान, मेवाड़ के कलुषित कलंक और कायरता के जीते-जागते उदाहरण माने जायँ, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं ।

पाठकप्रवर ! यदि कृष्णाकुमारी-सी अविरल सुन्दरी के लिये आठ-आठ आँसू रोने की इच्छा हो, यदि उसकी स्नेह-शीला माता के दारुण-करुण विलाप-कलाप से कलेजा कँपाना हो, यदि कल्पद्रुम-कुसुम-माला-मंडिता स्वर्ण-प्रतिमा का अकाल-विसर्जन देखकर दिल दहलाना हो, तो आइये, हमारे साथ राणाजी के अन्तःपुर में चलिये; किन्तु उदयपुर के रनिवास में चलकर एक हृदय-द्रावक दृश्य देखने के लिये पहले हृदय को वज्र से मढ़ लीजिये !

६

"विषस्य विषमौषधम्"

भीमसिंह के पिता को वेश्या का पुत्र जवनदास नंगी तलवार लेकर, उदयपुर के रनिवास को एक अनपेक्षित दृश्य दिखाने के लिये, प्रातःकाल से ही राजमहल के भीतरी भाग में इधर-से-उधर घूम रहा था। इतने ही में वह सुर-सुन्दरी, ईषत्-प्रस्फुटित कमल की भाँति मंद-मंद मुस्कराती हुई, आकर उसके सामने नतमस्तक हो खड़ी हो गई। एक तो वह अपने सुगन्ध-सिक्त केश-गुच्छ के भार से नत थी, दूसरे पितातुल्य जवनदास के आगे आकर वह लाज के बोझ से और भी दब गई। उस

मुक्तकेशी सुकुमारी का भूलोक-दुर्लभ लावण्य देखते ही जवनदास करुणा से भर गया। जवनदास से हृदय-रूपी करुणा-समुद्र में कृष्णा के लोचन लाज के जहाज बन गये। उसके हाथ से तलवार छूटकर गिर पड़ी! उसे मालूम हुआ कि भीषण भूकम्प के कारण सारा राजप्रासाद पाताल में धँसा जा रहा है।

कृष्णा धीरे से शीश झुकाकर बैठ गई। उसके मुखमंडल पर प्रसन्नता का रंग चढ़ता जाता था। अङ्ग-अङ्ग से प्रफुल्लता चुई पड़ती थी। जवनदास की आँखें दया-द्रवित आँसुओं में डूब गईं। उसके पैर उसकी काँपती हुई देह का भार न थाम सके।

उसी समय एक सजल-लोचना सुमुखी दासी हाथ में विष का एक प्याला लेकर आई और कृष्णा के हाथ में उसे देकर बोली—"उदयपुर के कल्याण की कामना करते हुए इसे पी जाइये।" कृष्णा ने शान्त भाव से प्याला थामकर, धीरता-पूर्वक, विष को पी लिया। उसी समय कृष्णा की सदया माता, वत्सोत्सुका धेनु की तरह, दौड़ती हुई वहाँ आ पहुँची। कालसर्प की तरह उस जवनदास की तलवार को वहाँ पड़ी देखकर, और विष के प्याले को बिल्लौरी फ़र्श पर लुढ़कता हुआ पाकर, वह राणाजी पर आक्रोश की वर्षा करने लगी। वात्सल्य-विभोर माता कृष्णा को गले से लगाकर, उसका माथा सूँघकर, रोने लगी।

कृष्णा ने माता को सान्त्वना देते हुए कहा—"जननि! तू वीर-माता और वीर-वधू होकर इस प्रकार क्यों अधीर हो रही है? राजपूत-कन्या होकर मुझे मौत से डरने का क्या काम है? जिस दिन मैंने राजपूत-कुल में नारी-जन्म धारण किया, उसी दिन मेरे भाग्य में विधाता ने यह अंकित कर दिया कि 'अकाल

अथवा अपघात मृत्यु से एक दिन निश्चय ही मरना पड़ेगा।' राजपूतों की दुःख-भागिनी कन्याएँ तो जन्म लेते ही नमक चटा-कर मार डाली जाती थीं; किन्तु न जाने मैं किस सुख की आशा से, इतने दिनों तक, लाड़प्यार के साथ पाली गई थी।

हा! कृष्णा के कोमल प्राणों ने प्राण-नाशक विष को भी परास्त कर दिया; किन्तु कृष्णा की परम सहिष्णुता ने राणा की निर्दयता को परास्त नहीं किया! दूसरा, और बाद को फिर तीसरा, प्याला पीकर भी कृष्णा ने दिखला दिया कि—

"राखनहारा साँइयाँ, मारि न सकिहैं कोइ"

किन्तु

"सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीच"

से विपरीत परिणाम को देखकर जवनदास के हृदय में हाहाकार मच गया! हाहाकार की प्रलयङ्करी आँधी ने धैर्य्य-द्रुम को उखाड़ डाला! प्रचंड लू की लपटों से झुलसे हुए मरुस्थल-यात्री की तरह बेचारी माता निष्प्राण हो गई! यह पैशाचिक कांड देखकर बाँदियाँ माथा थामकर, अचेत हो, जहाँ-की-तहाँ, गिर पड़ीं! सारा राजमहल शोक की गरजती हुई लहरों से परिप्लावित हो गया!

हा! हन्त!! अभी तक राणा के हृदय में दया का संचार नहीं हुआ! दया-देवी के मुँह पर लत्ता बाँधकर, और मनुष्यता-देवी की छाती पर पत्थर रखकर, राणा ने चौथा प्याला तैयार कराया! इस चौथे प्याले को हाथ में लेते ही कृष्णा का सौन्दर्य्य-गरिमा-मय मुखारबिन्द विकसित हो गया। इस प्रतारणामय संसार की दानवी लीला देखकर भी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें हँसती ही रहीं। स्वार्थ की विकट लीला, संसार का क्षणभंगुर चाक-

चिक्य और मानव-जीवन की असारता पर तिरस्कारपूर्वक हँसते हुए हालाहल का प्याला मुख के पास ले जाकर बोली—"हे परमेश्वर! मैं स्वदेश और स्वजाति की मङ्गल-कामना के साथ तुम्हारे इस मायामय लीलागार से सदा के लिये प्रस्थान करती हूँ। कृपा करके 'मुझे माया से मुक्त करनेवालों का' मन्तव्य पूर्ण करना! हे अशरण-शरण! मेरे प्राण-पखेरू को अपने पद-पल्लवों की सुखद छाया में विश्राम करने का स्थान दो। यदि तुम्हारे पद-प्रान्त-पर्यन्त पहुँचने का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हो सकता, तो दयापूर्वक मुझे ऐसे किसी स्थल में पहुँचने की शक्ति दो, जहाँ मृत्यु का भय नहीं, अन्धकार का आधिपत्य नहीं, पाप का प्राबल्य नहीं, पीडा का प्रभुत्व नहीं और स्वार्थ का साम्राज्य नहीं। हे भक्तकल्पद्रुम! मैं अब ऐसे ही किसी स्थान में जाना चाहती हूँ, जहाँ दया की नदियाँ बहती हों, सत्य का सूरज चमकता हो, प्रेम की चाँदनी छिटकती हो, क्षमा की ठंढी-ठंढी हवा चलती हो, सन्तोष के फूल खिलते हों, अमृत के फल फलते हों, आनन्द की उषा और शान्ति की सन्ध्या होती हो।"

इतना कहते-कहते कृष्णा का कमनीय कलेवर एकाएक तेजःपुञ्जमयी सौन्दर्य-ज्वाला से प्रज्वलित हो उठा! बुझते हुए दीपक की लौ की-सी सुन्दर मुस्कान से मुखमंडल उद्भासित हो उठा! प्याला का विष, अमृत से भरे हुए कनककुंड मे, ढलक गया। राजस्थान की कमलिनी मुर्झा गई! मेवाड़ की कीर्त्ति-कौमुदी अस्त हो गई! उदयपुर की राजलक्ष्मी अन्तर्हित हो गई! सतीत्व की धवल धारा सूख गई! अभागे भारत के निर्मल आकाश से एक ज्योतिष्मान् नक्षत्र टूट पड़ा!

तूती-मैना

I deem her some Olympian Goddess—guest,
Who brings my heart, now courage, hope and rest;
In her brave eyes dwells balm for my despair,
And then I seem, while fondly gazing there.

—*Poems of Passions.*

❀ ❀ ❀ ❀

हर्षित होते थे हार गूँथकर दोनों,
पहनाते थे फिर उन्हें परस्पर दोनों।
पल-पल में फिर वे उन्हे बदल लेते थे,
मिलकर पौधों को कभी सलिल देते थे।

—मैथिलीशरण गुप्त

किसी को मस्त और किसी को पस्त करनेवाला, किसी को चुस्त और किसी को सुस्त करनेवाला, कहीं अमृत और कहीं विष बरसानेवाला, कहीं निरानन्द बरसानेवाला और कहीं रसानन्द सरसानेवाला तथा अखिल अंडकटाह में नई जान, नई रोशनी, नई चाशनी, नई लालसा और नई-नई सत्ता का संचार करनेवाला सरस वसन्त पहुँच चुका था। नवपल्लव-पुष्पगुच्छों से हरे-भरे कुञ्ज-पुञ्ज में वसन्त-बसीठी मीठी-मीठी बोली बोलती और विरह मे विष बोलती थी। मधुर-मधुमयी माधवी-लता पर मँड़लाते हुए मकरन्द-मत्त मधुकर, बस—चराचर मात्र में नूतन-शक्ति-संचालन करनेवाले—जगदाधार का गुन-गुनकर गुण गाते थे। लोनी लतिकाएँ सूखे-रूखे वृक्षों से भी लिपट रही थीं। वसन्त वैभव ने उस वन को विभूति-शाली बना दिया था।

उसी सघन वन मे, नवकिसलय से सुशोभित एक अशोक-वृक्ष-तले, एक सजीव सुषमा की सौम्य मूर्त्ति, लहलही लता-सी तन्वी, सरल-तरल दृष्टिवाली, कोई कान्तिमयी कान्ता, खड़ी-खड़ी, मल्लिका-वल्लरी-वितानों के भीतर कबूतरों की क्रीड़ा एवं अलि-अवलि-केलि-लीला देख-देख, चकित हो, चिबुक पर तर्जनी अँगुली रखकर, मन्द-मन्द मुस्कानों की लड़ियाँ गूँथ रही थी। मजुल-मञ्जरी-कलित तरु-वर की शाखाओं पर, शान से तान का तीर मारनेवाली काली-कलूटी कोयल, पल्लवावगुंठन में मुँह छिपाये बैठी हुई, इस अनूपरूपा सुन्दरी को देख रही

थी। शीतल-सुरभित समीर विलुलित-अलकावली-तीर डोल-डोल-कर रस घोल जाता था। चञ्चल पवन अञ्चल पर लोट-लोट-कर अपनी विकलता बताता था। धीरे-धीरे लहराती हुई कालिन्दी की लहरों के सदृश चढ़ाव-उतारवाली श्याम-सुचिक्कण-कुञ्चित कुन्तलराशि, नितम्बारोहण करती हुई, आपाद लटक रही थी। यद्यपि निराभरण शरीर पर केवल एक सामान्य वस्त्र ही शेष था, तथापि वह शैवाल-जाल-जटित सुन्दर सरोजिनी-सी सोहती और मन मोहती थी। नैनसुख की धोती ही नयनों को सुख देती थी। रूप-रङ्ग मे अप्रतिम होने के कारण, अथवा लाड़-प्यार किंवा संसार से विलग रहने से, न जाने क्यों, उसके 'तूती-मैना' आदि कई जंगली नाम पड़े थे। जैसे जन-शून्य वनस्थली में बहुरंगे सुरभित सुमन खिल-खिलाकर अछूत और अज्ञात ही रह जाते हैं, उसी तरह वह मञ्जुभाषिणी सुहासिनी भी उस वन में दिन बिता रही थी।

फूलों को चुन-चुनकर माला गूँथना, कँगना और बाजू-बन्द बनाना, अपने रेशम-से मुलायम बालों में फूलों की कलियाँ गूँथना, हरिणियों की देह पर धीरे-धीरे हाथ फेरते रहना, कान देकर पक्षियो का गाना सुनना और नदी से कलसी में जल भरकर द्रुम-गुल्म-लतादि को सींचना—ये ही उसके नित्य के कृत्य थे। जब वह गंगा मे कलसी भरने जाती, तब मुकुरोज्ज्वल मन्दाकिनी में अपनी परछाईं देखकर, अपनी सुन्दरता पर आप-ही-आप मुग्ध होकर, मुस्कराने लगती थी!

कभी-कभी शून्य स्थान में स्वच्छन्द विहार करनेवाले पक्षियों और भ्रमरों को किलोलें करते देखकर उसके मन में यौवन-मद-

जनित एक प्रकार का मनोविकार-सा उदित हो आता था। किन्तु उससे वह प्रभावान्वित नहीं होती थी। एक तो कोमल-कमल-कलिका-सी सुकुमारी, दूसरे त्रिवली-सोपान द्वारा मन्मथ-महेन्द्र का क्रमशः आरोहण और तीसरे एकान्त वसन्त-वेष्टित वन में वास—सब कामोद्दीपक सामग्रियाँ जहाँ अहर्निश आँखों के सामने खेल-खेलकर रिझा रही थीं, वहाँ भला चपला-चञ्चल तारुण्य से आक्रान्त अबला का निवास कैसा कष्टकर था!!! कभी-कभी रुचिर-रश्मि-राशि राकेश की सुधा-सिक्त किरण-कन्याओं को पार्श्ववर्त्तिनी पुष्करिणी के स्फटिकोपम जल-वक्षः-स्थल पर थिरकते हुए देखकर यों ही मुस्कुरा उठती थी। जब वह कबूतरों को गोद में लेकर प्रेम-पूर्वक चूमने-चाटने लगती थी, तब वे स्निग्ध-कर-स्पर्श-जन्य अद्भुत सुख का अनुभव करते हुए, गोद में सटकर, पुलक-पल्लवित शरीर को फुलाकर, आनन्दोत्फुल्ल एवं अर्द्धोन्मीलित नयनों से मृगनयना मैना के सुधाधरोपम मुखड़े की ओर देखते हुए, उसकी पतली-पतली और नन्ही-नन्ही कोमलारुण अँगुलियों को चोंच में लेकर, धीरे-धीरे पीने लगते थे।

२

वनान्त-प्रदेश-वासी राजा राजीवरञ्जनप्रसादसिंह के प्रिय दत्तक पुत्र शशिशेखरकुमार, घोड़े पर सवार होकर, मृगया खेलने उसी वन में आये हुए थे। किशोरावस्था थी। निडर और ढीठ थे। घोड़ा मानों हवा से बातें करनेवाला था; इसी से शायद उसका नाम 'पलीता' रखा गया था। उसकी सजावट, तेजी और

डील-डौल देखकर देखनेवाले दाँतों अँगुली दबा लेते थे। कुमार साहब उसी अशोक के पास पहुँच गये, जहाँ वह शान्तोज्ज्वल स्मित-विकसित मुखड़ा चतुर्दिक् आनन्द की वृष्टि कर रहा था। वह भुवन-मोहन रूप देखते ही कुमार का मन निहाल हो गया! घोड़े से उतरकर मन-ही-मन सोचने लगे कि "नैवं रूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले!"—"लोचन-लाहु हमहिं बिधि दीन्हा!" कुमार किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो खड़े रह गये! जिन्होंने कभी गजेन्द्र कुम्भ-विदारक मृगेन्द्र का भी, विना मारे, पीछा न छोड़ा था, उन्हीं कुमार का कड़ा कलेजा, एक सौकुमार्य्य-पूर्ण सुन्दरी को देखते ही, मोम हो गया! जो कुमार अपनी दपट की झपट से छलाँग मारते हुए केसरी-किशोर को तत्क्षण भूमिशायी कर देते थे, वे ही वीर कुमार उस वामाक्षी को देखकर एक शब्द भी न बोल सके—निरा अवाक् रह गये! किसी तरह धैर्य्य धारण कर कुछ-कुछ लड़खड़ाती हुई ज़बान से बोले—"हे शुचिस्मिते! तुम किन-किन अक्षरों को पवित्र करती हो? किस शुभ देश से तुम्हारा वियोग हुआ है?"

कुमार के प्रश्नों का उत्तर न मिला। विशाल लोल लोचनों से दो-चार बूँद आँसू टपक पड़े! मानो 'मानस-सरोवर' के रुचिर 'राजीव' से, हंस द्वारा संचित, 'मोती' झरते हों। क्यों? "सो सब कारन जान बिधाता!"

कुमार को, आँसू टपकते देखकर, बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उससे उसके रोने का कारण पूछने का उन्हें साहस न हुआ। उन्होंने सोचा—"नाम-धाम पूछने का तो यह नतीजा हुआ; दुबारा कुछ पूछने से न जाने क्या-क्या गुल खिलेंगे! अभी तो

थोड़ी देर हुई कि हास्यमुक्ता-माला से मुखमंडल मंडित था। न जाने क्यों, अब अश्रु-बिन्दु-मुक्तावली गूँथकर स्वपद-तलस्थ मृदुल दुर्वादलों का मंडन करने लगी! हाँ, जो दूर्वादल उसके शयन करने के लिये मृदु शय्या बनाकर सुख देते हैं, उन वन्य शष्यों का मूल-सिञ्चन उसके लिये क्या कोई अनुचित काम है? जो हमारे सुख के लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देता है, उसके लिये हम यदि अपने कलेजे का खून भी दे दें, तो कौन-सी बड़ी बात है?" यही सोचते-सोचते कुमार 'कहि न सकै कछु चितवत ठाढ़े!'

थोड़ी देर सँभलकर एक ओर बड़े जोर से दौड़ पड़े। फिर कुछ ही देर में एक पलास के दोने में वन्य कन्द-मूल-फल आदि लाकर तूती के सामने रख दिये। कमल के पत्ते को चारों ओर से चुनकर, कुश से उसका मुँह बाँधकर, कमंडल बनाया और उसी में पास ही की नदी से थोड़ा जल लाये। परन्तु "प्रेम-विवश मुख आव न बानी।" साहस पर भार देकर बोले—"देवि! तुच्छ आतिथ्य स्वीकार करो।"

सौन्दर्य्य में बड़ी विलक्षण विद्युत्-शक्ति है। जिसके सामने दासगण सदैव हाथ बाँधे खड़े-खड़े मुँह जोहते रहते हैं, जो प्रचुर प्रजा-मंडली का भावी शास्ता है, उस समर्थशाली नृपनन्दन को क्षणमात्र में सौन्दर्य्य ने कैङ्कर्य्य सिखा दिया!

† † † † †

ठीक है, यदि सौन्दर्य्य में ऐसी अद्भुत आकर्षण-शक्ति न होती, तो मत्स्योदरी का नाम योजन-गन्धा कैसे होता? नारद के समान विरागी भजनानन्दी व्याकुलता की पराकाष्ठा तक क्यों

पहुँचते ? बेचारे राक्षस अमृत के बदले मदिरा क्यों पी लेते ? उर्वशी भला 'नारायण' के बदले 'पुरुरवा' का नाम लेकर क्यों स्वर्ग-च्युत होती ? शूर्पणखा को अपने नाक-कान क्यों कटाने पड़ते ? गोपियाँ लोक-लाज की तिलाञ्जलि क्यों देतीं ? रुक्मिणी खिड़की की राह से कृष्ण को प्रेम-पत्र क्यों भेजती ? ऊषा की सखी चित्रलेखा अपनी चित्र-कला-कुशलता का परिचय कैसे देती ? मानिनी राधिका के पैरों की महावर नन्दनन्दन के माथे का तिलक कैसे होती ?

❀ ❀ ❀ ❀

३

एक अपरिचित युवक के सामने तूती कन्द-फल-दल-जल, कुछ भी, छू न सकी। लज्जावनतमुखी होकर सरलतापूर्वक बोली—"तबतक इस चटाई पर बैठिये, पिताजी बाहर से आते होंगे।" तूती की वाणी सुनकर राजकुमार की दक्षिण भुजा और आँख फड़क उठी। उस चटाई पर बैठकर कुमार मखमली गद्दी की गुदगुदी अनुभव करने लगे। वे सोच रहे थे—

"कहत मोहि लागत भय लाजा।
जो न कहौं बड़ होइ अकाजा॥"

कुमार की सांसारिक वासनाओं मे तूती के प्रेम की-सी अलौकिक पवित्रता और क्षमता नहीं थी। जिस प्रकार गङ्गा मे मिलकर कर्मनाशा भी शुद्ध हो गई, उसी प्रकार तूती की सरलता-सुरसरी में कुमार की कुवासना-कर्मनाशा मिलकर निर्मल हो गई! उनकी इच्छा थी कि 'हमारे तमसाच्छन्न

हृदय में इसी छवि-दीप-शिखा का उजाला होता, इसी बाहु-लता की सघन छाया में हमारा प्राण-पथिक विश्राम करता, इन्हीं अधर-पल्लवों की ओट में हमारा प्राण-पखेरू छिपकर शान्ति पाता और इसी स्वर्गीय सौन्दर्य्य-सुधा का एक घूंट पीकर हम अमरत्व लाभ करते।' किन्तु कुमार की कलुषित कामना कुंठित हो गई! तूती का सारल्य उनकी कामना पर विजयी हुआ! नीच जल-विन्दु भी जैसे कमल-दल के संयोग से मुक्ताफल की-सी श्री धारण करता है, राजस सुख के उपासक कुमार का चित्त सात्त्विक सुख का अनुभव करते-करते वैसे ही धवलित हो गया!

प्रेमोन्मत्त मधुप कमलिनी को इतना रिझाता है कि वह अपने दिल के सब परदे खोलकर, भौंरे को भीतर बुलाकर, अनेक स्निग्ध-सुगन्धमय आवरणों के अन्दर छिपा लेती है। वह चाहती है कि मेरी सुन्दरता पर अपना तन-मन-धन निछावर कर देनेवाले अनन्य प्रेमी पर अब कोई दूसरा डाही डीठ न डालने पावे।

हंस-गण प्रतिदिन आते हैं, चमकीली सीपियों के स्फुटोन्मुख मुख चूम-चूमकर चले जाते हैं। सीपियाँ भी एक दिन दिल खोलकर उनके सामने मोतियों की डाली लगा देती हैं।

वंशी टेरनेवाला, प्रेम में खूब डूबकर, अपने हृदय का माधुर्य्य अधरों में भरकर, जब निभृत निकुञ्ज में सुरीली तान छेड़ने लगता है, तब हृदयहारिणी हरिणी भी कहने लगती है—

"चाम काटि आसन करौ, मांस रींधि कै खाउ।
जब लौं तन में प्राण हैं, तब लौं बीन बजाउ॥'

४

भगवान् भास्कर, संसार-भर के शुभाशुभ कर्मों का निरीक्षण करके कर्त्तव्य-परायणता का परिचय देते हुए, पश्चिमाचल की ओर चल पड़े। संध्या-वधू ने अपने धूसर अञ्चल से धरणी का नग्न पृष्ठ-देश ढँक लिया। थोड़ी देर के बाद, ताराओं की मुक्तामाला पहन, ललाट पर चन्द्रचन्दन की बिन्दी लगा, दिगङ्गनाओं को उज्ज्वल दर्पण दिखाती और चकोरों को चाँदनी की चाशनी चखाती हुई, राका-रजनी-रमणी आ पहुँची। मालूम हुआ, मानों यह दुनिया ज्योत्स्ना-तरङ्ग में स्नान कर रही है।

चटाई पर बैठे-बैठे कुमार अनुक्षण रूप-सुधा-माधुरी पान कर रहे थे। चन्द्रमा के किरण-जाल में अपने सौन्दर्य-सुरसरीगत मन-मीन को फँसाने की असफल चेष्टा कर रहे थे। कभी सिन्दुरिया आम और चिबुक से, कभी विकसित किंशुक-कुसुम और नासिका से, कभी अंगूर के गुच्छों और स्तन-स्तवक से, कभी पके जम्बूफल और कुन्तल-कलाप से, कभी अनार-दानों और सुशोभन दन्त-पंक्ति से, कभी पकी हुई नारङ्गी और देह की गौरवमयी गौरता से तथा मृगशावक के आकर्ण-विस्तृत नेत्रों और तूती के तरलायत लोचनों से सादृश्य मिलाते थे। कभी कंठ से विद्रुम की माला निकालकर उसमें उन कोमल अधरों की-सी अरुणिमा ढूँढ़ते थे। किन्तु वह पीन-घन-सजीव शोभा कहीं मिलती न थी!

एकाएक प्रेमान्ध होकर फिर कुमार ने कहा—"हे कन्दर्पकीर्त्ति-लतिके! ये तेरे विषम विशिख-सरीखे नयन तो शेर के

शिकारियों का भी शिकार करनेवाले अचूक आखेटक मालूम होते हैं ?" भोलीभाली तूती कूपमंडूक थी। उस वन्याश्रम और उस कुञ्ज-कुटीर के सिवा भी कोई स्थान संसार में है, यह उसे मालूम ही नहीं था। कुमार की उक्तियाँ सुनकर, सरल हँसी हँसती हुई, तूती उनका मुख निहारती रह जाती थी। तूती का भोलापन देखकर कुमार मुग्ध हुए बिना न रह सके। वे मन-ही-मन सोचते थे कि 'चाहे तूती देवाङ्गना हो या वनदेवी हो; पर अपने राज्य में आई हुई सर्वोत्तम वस्तु को अब दूसरे किसी के हाथ मे न जाने दूँगा। राज्य-भर में जितनी उत्तमोत्तम वस्तुएँ हों, उन सबका संग्रह राजाओं को अवश्य ही करना चाहिये।'

५

द्रुम-लताओं की ओट में छिपे-छिपे एक महात्माजी सारी प्रेम-लीला देख रहे थे। तूती की स्वाभाविक सरलता और कुमार की प्रेमिकता देखकर हँसते-हँसते वे पूरब की ओर से प्रकट हुए। मानो आशुतोष शिव औढरदानी, तूती और कुमार के प्रेम-याग से सन्तुष्ट होकर, उनके मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त प्रकट हुए हों। महात्माजी सर्वाङ्ग में भस्म रमाये, सिर पर जटा बाँधे और हाथ में सुमिरनी लिये हुए थे। इन्होंने ही तूती को गंगा की बाढ़ में बहते जाते हुए देखकर, पकड़ा था और चार वर्ष की अवस्था से ही, आज सोलह वर्ष की अवस्था तक, बड़े लाड़-प्यार से पाला था।

महात्मा को देखकर तूती सहम गई। राजकुमार चकित होकर चरणों में झुक गये। महात्मा ने पूछा—"तू कौन है ?

तेरा यहाँ क्या काम है ?" राजकुमार ने हाथ जोड़कर कहा—"महात्मन्! मैं मृगया-वश इस जंगल में चला आया हूँ। एकाएक मैं आपकी कुटी की ओर निकल आया। यहाँ आने पर मैं इस देवी को देखकर स्तम्भित हो गया। मैंने ऐसा भोलाभाला अनूठा रूप कभी देखा नहीं था। इस पर्ण-कुटी के पास आते ही मैंने इस देवी को रोते देखा। कुछ ही देर पहले यह हँस रही थी। इसका रोना देखकर मैं अधीर हो गया। इसे भूख-प्यास के कारण रोती जानकर मैं विमल-सलिला गङ्गा से थोड़ा जल और कुछ जंगली फल ले आया। किन्तु इसने मेरा सत्कार स्वीकार नहीं किया है। इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं। इसके सिवा मेरा कोई अपराध नहीं। अभी तक मैंने इस देवी की केवल मानसिक पूजा की है। इस अलौकिक रूप ने मुझे अपना किंकर बना लिया है। मै इस अमूल्य रत्न का भिक्षुक हूँ। आप इस अपराध को यदि दंडनीय समझते हैं, तो इस अतुलनीय रूप-रत्न का याचक बनकर मैं आपका शाप भी ग्रहण कर सकता हूँ।"

राजकुमार की सच्ची बातें सुनकर महात्मा ने कहा—"हम तुम्हारे सद्भाव से सन्तुष्ट हैं। तुम राजकुमार जान पड़ते हो। तुम्हारा ब्रह्मचर्य्य-प्रदीप्त मुखमंडल देखकर हम प्रसन्न हैं। यह कन्या गंगा की बाढ़ में बहकर आई थी। हमने बड़े स्नेह से इसका पालन-पोषण किया है। आज हमारा स्नेह-संवर्द्धन सार्थक हुआ। हमारे-जैसे विजन-वन-विहारी वाताम्बु-पर्णाहारी की कुटी में इसको कष्ट होता था। यह तुम्हारे राजमन्दिर के ही योग्य है। हम हृदय से आशीर्वाद देते हैं कि यह मणि-काञ्चन-संयोग सफल हो। मणि का स्थान राजमुकुट ही उपयुक्त है।"

बनाया, उसी ने बिजली को भी व्रजबाला बना दिया। फूल बनानेवाले ने ही भ्रमर के छोटे-से हृदयकेन्द्र में अगाध प्रेम-सागर उमड़ाकर 'गागर मे सागर' भर दिया !

७

अहा ! जो तूती शून्यारण्य में चहकती थी, जिसके कुन्तल-कलाप को पन्नगी-परिवार समझकर मयूर-माला अपनी चोच से धीरे-धीरे बखेरती थी, जिसके दिये हुए अनार-दानो को चखनेवाले शुक-शावक कुटो के पास वृक्ष-शाखाओ पर बैठकर नित्य ही कलरव करते थे, जिसकी बोली सुनकर जगली मैना भी अपनी बोली बिसारकर वैसी ही मीठी बोली बोलने का अभ्यास किया करती थी, जिसके फूलों से भरे अञ्चल मे से बावले-उतावले भ्रमरों का झुंड निकलकर सुरभित श्वास-समीर के लोभ से घ्राण-रन्ध्र के पास टूट पड़ता था, वही तूती अब राज-प्रासाद के मखमली परदो मे, वृहद्दर्पणालंकृत विविध-चित्र-विभूषित विलास-मन्दिरो मे और खस की टट्टियों से जड़ी हुई बारहदरियों में बन्द रहने लगी। जो बिजली वन मे तूती की शोभा निहार-कर आरती उतार जाती थी, अब वही बिजली खिड़कियो की राह से भी झाँकने नही पाती—तड़प तड़पकर बाहर ही रह जाती है ! वन्य वृक्षलतादि को सींचने के समय तूती के विधु-वदन पर जो श्रम-स्वेद कण परिलक्षित होते थे, उन्हें प्रकृतिदेवी अपनी पवनान्दोलित लतिका-कन्यकाओं के पुष्पमय अञ्चलों से पोंछ लेती थीं, अब उन्हीं कुंडल-कलित कल-कपोलों को शशिशेखरकुमार अपने सुगन्ध-सिक्त रेशमी रूमाल से पोंछकर

झट आँखों से लगा लेते हैं। जो हाथ झञ्झावात के झोंकों से इतस्ततः उलझी हुई लताओं को सुधारने में सधे थे, अब वे ही हाथ हारमोनियम और सितार पर सध गये!

संसार का सारा सौन्दर्य्य यदि प्रेम की सुगन्ध से शून्य हो जाय, तो ईश्वर ने अपने 'मनोरञ्जन' के लिये जो यह विश्व-महा-नाटक रचा है, उसका पहला परदा कभी न उठे; सारा खेल मटियामेट हो जाय! प्रेम की सुगन्ध के बिना यह जीवन-कुसुम सौन्दर्य्य की थाती लेकर क्या करेगा?

देखिये, जिन पर्वत-शिलाओं पर घास-पात का परदा था, जिनका कलेवर काई से ढँका रहता था, जिनपर चाँदनी भी आकाश से उतरकर घड़ी-भर के लिये रँगरलियाँ मचा जाती थी, वे ही शिलाएँ आज पहाड़ की चोटियों से उतरकर, प्रेमवश दृष्टिउन्मेषिणी एवं लोचनानन्ददायिनी मूर्त्तियाँ बनकर, देवमन्दिरों में आ डटी हैं। अब उनका कलेवर प्रकृति की गोद में पले हुए फूलों से ढँका हुआ नहीं है, बल्कि दूध की धाराओं से सींची हुई संगमर्मरी क्यारियों में फूलनेवाले फूलों के मोटे-मोटे गजरे उन्हें पहनाये जाते हैं। काई के बदले अब हरे रंग की ज़रीदार मखमली पोशाक सुशोभित हो रही है! यही इस परिवर्त्तनशील संसार की विचित्रता है!

"मैना! तू वनवासिनी, परी पींजरे आनि।
जानि दैव गति ताहि में, रही शान्त सुख मानि॥"

❀ ❀ ❀ ❀

"कहे 'मीर' कवि नित्य, बोलती मधुरे बैना।
तो भी तुझको धन्य, बनी तू अजहूँ 'मै-ना'॥"

वीणा

दूती ! बैठी हूँ सजकर मैं,
ले चल शीघ्र मिलूँ प्रियतम से;
धरा, धाम, धन, सब तजकर मैं
धन्य हुई हूँ इस धरती पर,
निज जीवन-धन को भजकर मैं;
बस अब उनके अंक लगूँगी,
उनकी 'वीणा'-सी बजकर मैं !

—मैथिलीशरण गुप्त

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

She gave me eyes, she gave me ears,
And humble cares, and delicate fears,
A heart,—the fountain of sweet tears,
And Love and Thought and Joy.

—*Wordsworth.*

१

कौन वीणा ? किसकी वीणा ? कहाँ की वीणा ? क्या सरस्वती के कर-कंजों मे शोभा पानेवाली ? क्या किन्नरियो की गुलगुल गोद में ठुमकनेवाली ? क्या कादम्बरी की अँगुलियों को अपने तार में उलझाकर नचानेवाली ? क्या महाश्वेता के उन्नत उरोज की सहचरी ? या वह देवर्षि नारद की गोविन्द-गुण-गण-गान-परायणा वीणा तो नहीं, जिसके कठ-हार के चू जाने से महाराज अज का प्राणाधार, हृदय-धन, जीवन-सर्वस्व एवं सुख-सौभाग्य घोर अन्धकार और भीषण हाहाकार में विलीन हो गया था ?

नहीं जी, वह वीणा नहीं !

तो फिर यह है कौन-सी वीणा ? क्या पवन-देवता द्रुम-गुल्म-लता के तीर-तीर विहरण करते हुए कीचक-रन्ध्र में प्रवेश करके जो मधुर ध्वनि उत्पन्न करते हैं, वह इसी वीणा का कल स्वर है ? क्या भगवान् सिन्धु-देव अपनी जिस गम्भीर हुङ्कार-ध्वनि से दिग्दिगन्त को निनादित करते हैं, वह ध्वनि इस वीणा की ध्वनि से मिलती-जुलती-सी है ? भगवती भारत-वसुन्धरा अपने सुविस्तृत वक्षःस्थल पर रखकर, अपने मुखरित पाद-मंजीर और कटि-किंकिणि-क्वणन से स्वर मिलाकर, अनन्त-तरल-तरङ्ग-मयी वारिधि-वल्लभा-रूपिणी जो वीणा बजा रही है; क्या वही वीणा ? गगन-मंडल के हृदय-तल में बड़े चमत्कार के साथ

चमककर जो असंख्य हृत्तन्त्री में बड़ी चंचलता से झनकार पैदा कर देती है, क्या वह वीणा? भगवान् हुताशन की लोल लपटों के संघर्षण से जो ध्वनि निकलती है, क्या वैसी ही ध्वनि उत्पन्न करनेवाली वीणा?

नहीं, नहीं, ऐसे कठोर शब्दों में क्यों पूछते हो? जैसी वीणा की कल्पना तुम्हारे शब्दों ने की है, वैसी तो हमारी वीणा नहीं है। वह तो अतीव सुकुमारी है, उसकी कल्पना सुकुमार शब्दों ही द्वारा की जा सकती है। हमारी वह वीणा अब भी वसन्त में कोयल बनकर कल गान सुना जाती है! वर्षाकाल में निशीथ कालीन झिल्ली-झनकार बनकर हमारी गाढ़ी नींद उचटा जाती है! ग्रीष्मकाल में मृग-तृष्णा की तरंगमाला बनकर हमें बरबस तृषित बना देती है! हेमन्त में कुन्देन्दु-धवल तुषार कण बनकर अपने जन्म-जन्मान्तर के वैरी कमल-कुल का विनाश कर जाती है और शरत्काल में चन्द्रचूड-चूडाच्युत चन्द्रलेखा की सुधा-स्राविणी चन्द्रिका बनकर हमारे चित्त-चकोर को नचा जाती है!

हाय! सब कुछ करती है, किन्तु प्रत्यक्ष दर्शनों से वंचित रखती है! अहा! वह अप्रतिम प्रतिमा, प्रभा-प्रदीप्त प्रतिमा, ग्रीष्मकालीन सघन-शीतल वटच्छाया-सी वह प्रतिमा, वसन्त-काल की नव-किसलय-कलित रसाल-द्रुमावली-सी वह प्रतिमा, प्रभात-कालीन मलय-मारुत से ईषत्-दोलायमाना मन्दस्मिता नव-नलिनी-सी वह प्रतिमा, वासन्ती सन्ध्या-समीरणजनित गङ्गा की कृश-कल्लोल-मालिका-सी वह प्रतिमा, जयदेव की कोमल-कान्त पदावली-सी वह प्रतिमा, शोण-सैकत-शय्या पर लेटी हुई सद्यः

उदित सूर्य्य की किरणों की-सी वह प्रतिमा, श्रावण की जल-प्लाविता शस्य-श्यामला वसुन्धरा की-सी वह प्रतिमा, नवोढा कृषक-ललना के कर-तल-विराजित नव-शालि-वालि-पुंज की-सी वह प्रतिमा, अर्जुन के प्रति स्वर्गीय वाराङ्गना उर्वशी की मधुर-कटाक्षपात-पूर्वक विनीताभ्यर्थना की-सी वह प्रतिमा, मरुस्थल के श्रान्त एवं तृषार्त्त पथिक के लिये सजला-सरसी-दर्शन की-सी वह प्रतिमा, दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला की निरन्तर चारु-चिन्ता की-सी वह प्रतिमा, कार्त्तिक-मास की दीपावली से नख-शिख-मंडिता काशी की गङ्गातटस्थ आकाशचुम्बिनी प्रासाद-प्रणाली की-सी वह प्रतिमा, भाद्रपद के नीरव निशीथकाल में वर्षा-वारि-विलोडिता खर-स्रोता सरिता की दूरागत कल-कल-ध्वनि की-सी वह प्रतिमा, कुसुमित दाम्पत्य-प्रेम-पादप के प्रथम फल की आशा की-सी वह प्रतिमा, पुष्पोद्यान में प्रथम बार रामचन्द्र-दर्शन से मैथिली के मानस-मन्दिर में प्रकट हुई अलौकिक प्रीति-ज्योति की-सी वह प्रतिमा, लावण्य-लीला-विस्तारिणी नव-वधू के मित-मिष्ट-भाषण की सी वह प्रतिमा ! हाय ! कैसे कहे कि वह कैसी प्रतिमा थी ! भगवन् ! क्या अब वह प्रतिमा कभी देखने को भी न मिलेगी ?

२

पराई वस्तु पर हमारा अधिकार कैसा ? दूसरे के गले की माला पहनने के लिये हम अपना गला क्यो कटाते हैं ? वह हमारी कौन होती है ? व्यर्थ प्रलोभन में पड़कर हम क्यों मृग-तृष्णा में भटकते फिरते हैं ? बिना मिज़राब की वीणा लेकर ही हम क्या करेंगे ? हमी ने इश्क का दामन पकड़-पकड़-

कर अपने दिल की सेज पर बैठाया, तो अब दूसरा कौन दर्द बरदाश्त करेगा ? 'बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते होय ?' 'तब न ज्ञान अब ज्ञान ?'

वह स्वर्गीय देवी, हम मर्त्य मनुष्य ! वह साध्वी महिला, हम लोलुप लम्पट ! वह शुकदेव की पवित्र भावना, हम रम्भा के मलिन मनोरथ ! वह प्रह्लाद की प्रतिज्ञा, हम हिरण्य-कशिपु के हृदय ! वह रुक्मिणी, हम शिशुपाल ! वह द्रौपदी, हम जयद्रथ ! वह सीता, हम रावण ! वह कविता, हम यतिभङ्ग ! वह सर्व-मङ्गला, हम विघ्न-बवंडर ! वह उपासना, हम इन्द्रिय-विलास ! वह सुधा, हम गरल ! वह लता, हम प्रभंजन ! वह कुसुम, हम कीट ! छिः !! हमारा उसका सम्बन्ध ही क्या ? हमारा उसका मिलन ही कैसा !

वह वीणावाद्यप्रवीणा जब अपनी छत की खिड़की पर बैठी-बैठी वीणा बजा-बजाकर 'राष्ट्रीय वीणा' का यह करुणा-पूर्ण पद्य गाने लगती थी—

"हे प्रभु ! क्यों इस भाँति मुझे है दीन बनाया ?
दुःख-सिन्धु का, दयासिन्धु ! क्यों मीन बनाया ?"

तब उसके प्रति हमारे हृदय में अनायास आस्था का आविर्भाव हो आता था और हम यह कहे विना नहीं रह सकते थे कि—

"वीणा-पुस्तक-रंजितहस्ते !
भगवति वीणापाणि ! नमस्ते ।"

किन्तु, फिर सँभलकर जब हम उस अनवद्याङ्गी का अनिर्वचनीय रूप देखने लगते थे, तब आँखें कहती थीं कि सारी इन्द्रियों के प्राण हमारे अन्दर भर दो, ताकि जी भरकर हम

देख लें।' हृदय कहता था कि 'आँखों को बन्द कर लो, ताकि खुली खिड़कियों से हवा आकर हमारे घर का दीपक न बुझा दे।' पैर कहते थे कि 'आँखों ने हमें अशक्त कर दिया है, ऊपर की सारी शक्तियाँ समेटकर नीचे लाओ, हम अभी तुम्हें चन्द्रलोक की सैर कराते हैं।' मन कहता था कि 'दृष्टि-द्वार बन्द करो, अधिक प्रकाश आने से चित्र अङ्कित करने में—फोटो उतारने में—बड़ी बाधा पड़ती है।' हाथ कहते थे कि 'दवात-कलम-कागज ले आओ, हम अभी समस्या हल किये देते हैं।'

❀ ❀ ❀ ❀

हमें हाथों की बात पसन्द आई। हम झट अपनी अध्ययन-शाला मे चले गये। वहाँ जाकर चार चिकने पत्र-खंड रँग डाले। स्याही से नहीं, प्रेम के गाढ़े रङ्ग से। किन्तु प्रेम में तो वासना की बू नही होती। प्रेम तो सती की पति-चिन्ता और ध्यानावस्थित योगी की समाधि से भी पवित्र कहा जाता है। यह तो शीत-बिन्दु की तरह शस्य-शामला वसुधा पर स्वर्ग से अवतीर्ण होता है और फिर रवि-किरणों की गोद में बैठकर स्वर्ग ही मे लौट जाता है। स्वाती-बिन्दु सीपी के उदर में आकर मोती बन जाता है और संसार में अपना मोल-तोल बढ़ा लेता है। प्रेम-रूपी शीत-बिन्दु शष्पाग्रस्थ होकर थोड़ी देर के लिये संसार मे अपनी चमक-दमक दिखाता है और सूर्य्य की शैशवावस्था की मुस्कान की छटा दिखाते हुए स्वर्ग को लौट जाता है। स्वाती-बिन्दु चातक की प्यास बुझाता है; पर ओस चाटने से किसी की प्यास नहीं जाती। स्वाती-बिन्दु की तरह

यदि प्रेम भी किसी हृदय की तृष्णा शान्त करता, तो फिर प्रेम से कोई अतृप्त नहीं रह जाता। हम भी ओस ही चाटकर प्यास बुझाना चाहते थे; पर अतृप्त ही रह गये!

३

चैत की पूर्णिमा थी! वासन्ती निशीथकाल का यौवन जड संसार में भी सजीव सौन्दर्य्य भर रहा था। सुनीलाम्बर में राका-रजनीश अपनी उदारोज्ज्वल मुस्कान से हर ओर जादू जगा रहे थे। भगवान् व्योमकेश के जटाजूट में स्वर्गङ्गा छहरा रही थी। दिगङ्गनाएँ नक्षत्र-पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर उनकी सविधि अर्चना कर रही थीं। शुभ्र ज्योत्स्ना जगतीतल पर शान्ति-सुधा प्रवाहित करके स्फटिक-सलिला गंगा की गोद में खेल रही थी। गंगा के दोनों तटों की द्रुम-माला चन्द्रिका की मीठी-मीठी थपकियों से निद्रा-निमग्न हो गई थी। दो-चार नौकाएँ धीरे-धीरे गंगा में चली जाती थीं। वारुणी-विभ्रान्त मल्लाहों के डाँड़ खेने से जल में जो शब्द होता था, वह उनके अर्द्धस्फुट-श्वासोद्‌गीर्ण गीतांश के साथ मिलकर निशीथिनी की नीरवता को भंग करता था। उसी समय हमारी उन्निद्रित आँखों ने कौमुदी के प्रकाश में मणि-कर्णिका-घाट की नीचेवाली सीढ़ी पर एक तरुणारुण-तामरसाभ मुखड़ा देखा। हम झट उठकर उस स्थान तक चले गये। हमने देखा कि एक शुक्ल-वस्त्र-परिधाना मुक्तकेशी विधवा वहाँ बैठ-कर रो रही है! उसके रोने में करुणा की संगीत-लहरी थी, जो उस समय गंगा ही की तरह वहाँ स्तिमित गति से बह रही थी। हमारा हृदय उसी करुणा-कल्लोलिनी की तरङ्गों में डूब गया!

हम हृदय-हीन की तरह चुपचाप वह दृश्य देख रहे थे। हमसे कुछ करते या कहते नहीं बना। हम एक छतरी के नीचे छिपकर बैठ गये। वह रोते-रोते एकाएक उठकर खड़ी हुई और हाथ जोड़कर भगवती भागीरथी से कहने लगी—"जननि गंगे! इसी जगह मेरी मुद्रिका का नगीना खो गया है! मुझे दे दे। मेरा सर्वस्व लेकर तू क्या करेगी? तुझे क्या कमी है? मुझे ऋण के तौर पर दे; फिर व्याज-सहित ले लेना। तू तो आज-तक असंख्य चिताओं को बुझा चुकी, फिर मेरे हृदय की धधकती हुई शोकाग्निज्वाला क्यों नहीं बुझाती? क्या तुझमें वैधव्यज्वाला शान्त करने योग्य शैत्य नहीं है?"

इतना कहकर वह विधवा अपने घर की ओर चली। जाने के समय हमने देखा कि यह तो वही 'वीणा' है! जब वह कुछ दूर चली गई, तब हम भी उसके पीछे-पीछे चले। हमें सन्देह हुआ कि 'हमारी वीणा तो गत वर्ष अपनी ससुराल चली गई, वह तो अमृतसर के सेठ मुकुन्ददास के पुत्र को व्याही थी, उसका सौभाग्यादित्य तो उसके जीवन गगन के मध्य भाग में विराजमान था, उसका आनन्द-पारावार तो अगाध और अपरिमेय था, वह असूर्य्यम्पश्या किशोरी तो कभी घर की चौखट भी नहीं लाँघती थी; हो न हो यह कोई दूसरी बाला है।' हम समझते थे कि वीणा-सी सुन्दरी फिर कभी हमारे दृष्टि-पथ पर आरूढ न होगी। किन्तु वह हमारा भ्रम था। यह सुन्दरी तो अलंकार-शून्य होने पर भी सर्वाङ्ग-सौम्या है, अनाश्रिता लता होने पर भी इसके पल्लव हरे-भरे हैं, अर्द्ध-दग्ध होने पर भी यह वृन्त-च्युत अनाघ्रात कुसुम-कलिका-सी मनोहरा है।

हम इसी उधेड़-बुन में पड़े थे, तब तक वह एक घर में पैठ गई! हमने देखा कि यह तो वही घर है, जिसमें वीणा रहती थी। हम उसी जगह एक चबूतरे पर बैठ गये। अनायास हमारा हाथ जेब में चला गया। हमने अपने लिखे हुए प्रेम-पत्र को वहीं फाड़ डाला। आँखों के आगे अँधेरा छा गया! छाती धड़कने लगी! हम सोचने लगे कि 'क्या सचमुच विधवाओं के दु:ख मे ब्रह्मांड हिला देने की शक्ति है? क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती के मस्तिष्क-महोदधि में तूफान उठानेवाला वैधव्य-दुःख इतना भयंकर है? क्या अनादिदेव महादेव की समाधि भङ्ग करनेवाला विधवा-विलाप इतना मर्मतलस्पर्शी है?' सोचते-सोचते अचेत होकर हम वहीं पड़ रहे। फिर न जाने क्या हुआ!

४

ग्रीष्मकाल की सन्ध्या थी। बहुत-से लोग मणिकर्णिका-घाट पर स्नान कर रहे थे। गङ्गा में बँधी हुई मचानों पर एक-से-एक भव्य मूर्त्तियाँ बैठी थीं। एक महाशय कुशासन पर त्रिपुंड्र लगाये सन्ध्या कर रहे थे। उनकी नाक पर अंगुली का अंकुश लगा हुआ था; पर उनकी आँखें निरंकुश होकर एक आकंठ-जल-मग्ना नवयुवती को घूर रही थीं। हमारी दृष्टि पहले उन्हीं पर जा पड़ी। फिर उनकी दृष्टि के सङ्केत का सहारा पाकर हमने भी उसे देखा। वह पश्चिमाभिमुख होकर सूर्यार्घ्य दे रही थी। मालूम होता था, मानों कोई कमलिनी अपने विदेश-गमनोद्यत प्राणनाथ कमलिनी-वल्लभ के चरणों मे अश्रु—अञ्जली अर्पित करती हो। कुछ देर ध्यान-मग्न हो वह, ज्यों-की-त्यों, वहीं खड़ी रही। फिर जब वह बाहर आई, तब झुंड-की-झुंड आँखों ने

देखा कि जिस तरह बारीक विदेशी वस्त्र की महिमा ने भारत-माता को दरिद्र बना दिया है, उसी तरह उसकी लज्जा को भी नग्न कर दिया है ! अब हमारी आँखों ने पहचाना कि यह वही विधवा युवती है, जिसे उस दिन चाँदनी के प्रकाश में देखकर हमें 'वीणा' का भ्रम उत्पन्न हुआ था। आज भी वैसी ही भ्रान्ति हुई। उस सम्भ्रान्त महिला को देख-देखकर हम दो-दो बार भ्रान्त हो चुके; पर तो भी ऐसा विश्वास नहीं होता था कि वह वही 'वीणा' है। कपड़े बदलकर, धोती फचारकर और चाँदी की झारी में गङ्गाजल भरकर वह विश्वनाथजी की ओर चल पड़ी। तब हमारे मन में एकाएक यह दृढ निश्चय हो गया कि यह वीणा के सिवा दूसरी बाला कदापि नहीं हो सकती।

हमने सोचा कि फिर ऐसा सुअवसर हाथ न लगेगा। अमावस्या का अन्धकार आज हमारे हृदय का अन्धकार दूर करने के लिये ही आया है। हमने दुस्साहस-पूर्वक आगे बढ़कर उस सुन्दरी से कहा—"जैसे अपनी खिड़की पर बैठकर वीणा बजाकर गाती हो, वैसे ही गङ्गा में किश्ती पर हमारे साथ चलो और अपने कोमल कंठ से केवल एक बार कल-गान सुनाकर हमें कृतकृत्य कर दो।" हमारी बात सुनकर उसने कहा—"इस समय तो मैं विश्वनाथजी की सेवा मे जाती हूँ, यदि तुम्हे ललित-कला से इतना प्रेम है, तो मेरे घर पर प्रातःकाल आओ, मैं उसी समय भजन गाती हूँ, जी भरकर सुन लेना !" हमने बड़ा आग्रह किया; पर उसने एक भी न सुना। अन्त में आरी आकर हमने उसे चमचमाता हुआ छुरा दिखाया ! वह चौंक कर काँपने लगी ! हमने झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया।

उसकी घिग्घी बँध गई ! हमारे मुँह की ओर वह कातर दृष्टि से देखने लगी। उसके कम्पित अधरों को भेदकर दो-चार स्फुट शब्द निकले—"दया करो, चलती हूँ।"

† † † †

हम गंगा की ओर आगे-आगे चले। वह हमारे पीछे-पीछे आने लगी। तट पर पहुँचकर हम दोनों एक किश्ती पर सवार हुए। किश्ती डोल गई ! गंगा का हृदय भी काँप उठा ! लहरों ने काँपते हुए हाथों से किश्ती को गंगा के बीच की ओर ठेल दिया। गंगा का हृदय हमारे-जैसे पापी का भार वहन या सहन न कर सका। किश्ती डगमगा रही थी। 'वीणा' गा रही थी—

"अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिर ना डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिन्तामनि, उर-कर ते ना खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित-कंचनहिं कसैहौं॥
पर-बस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज-बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि 'तुलसी' रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥"

वीणा के वीणा-मधुर कंठ-स्वर से वह शून्य जल-लोक भर गया ! प्रेमानन्द के वृष्टि-बाहुल्य से हमारा हृदय भर गया। जिस प्रकार प्यासा पथिक जलाशय के पास पहुँचकर अधीर हो जाता है, उसी प्रकार हम भी आतुर हो गये। हमारी अस्थिरता असीम हो उठी। उद्विग्नता के सीमा-रहित क्षेत्र में ज्ञान का केन्द्र-विन्दु लुप्त हो गया ! हम उसका हाथ पकड़कर खींचने लगे। वह हाथ झाड़कर झुँझलाती हुई बड़े क्रोध से बोली—"रे नीच ! तू धोखा देकर मेरे साथ अब बलात्कार करना चाहता

है ? क्या तू नहीं जानता कि हिन्दू-विधवा का जीवन एकान्तिक उपासना पर अवलम्बित है? क्या तू नहीं जानता कि मुझ अबला का अनाथ-नाथ यहाँ भी मौजूद है ? तेरे-जैसे दैत्य के दृष्टि-दोष से दूषित यह देह अब हिन्दू-समाज के योग्य नहीं रही; जा, तू ही हिन्दू-समाज का कलङ्क बना रह ।"

हम तो स्तब्ध थे, वह यहाँ तक कहते-कहते गंगा में धम से कूद पड़ी । हम चकित होकर चिल्ला उठे । आप से-आप हमारे मन में यह भाव उदय हो आया कि कदाचित् गंगा के अञ्चल में आज तक ऐसा पवित्र पुष्प न पड़ा होगा ! ऐसा भाव हृदयङ्गम होते ही आत्म-ग्लानि से चित्त क्षुब्ध हो गया ! हम भी पतितपावनी अधमोद्धारिणी गङ्गा की गोद में कूद पड़े ।

धन्य ! कुसुम के साथ कीट की सुगति हुई यों,
सूर्य्य-किरण के साथ ओस की मुक्ति हुई ज्यों ।

❀ * ❀ *

इस भाँति ओस ने सत्कर्मों से प्राप्त किया जब से निर्वाण !
लेकर 'वीणा' हाथों में सुमधुर किया प्रकृति ने तद्गुण-गान !

—मुकुटधर

विचार-चित्र

She is grown so dear, so dear
That I w'd be the jewel
That trembles at her ear.
And I w'd be the girdle
About her dainty dainty waist,
And her heart w'd beat against me
In sorrow and in rest:
And I w'd be the necklace
And all day long to fall and rise
Upon her balmy bosom,
With her laughter or her sighs;
And I w'd lie so light, so light,
I scarce sh'd be unclasp'd at night.

—*Tennyson.*

† † † †

मैं था देख रहा छटा जलद की, बैठा हुआ बाग मे,
काचित् चन्द्रमुखी पुरो मम सखे ! तत्र भ्रमन्त्यागता।
जाने क्यों हँसती चली फिर गई ! क्या मोहिनी मूर्त्ति थी !
स्वप्ने साद्य न दृश्यते त्वणमहो ! हा राम ! मैं क्या करूँ !

—रामचरित उपाध्याय

इस मायामय संसार को लोग प्रेम फुलवारी कहा करते हैं। इस प्रेम-फुलवारी के जितने भौंरे हैं, उनकी गति ही निराली है! प्रकृति की गोद में पले हुए भौंरे तो चम्पा के विकसित फूल से घृणा करते हैं; पर ये तो उन फूलों की-सी भी कोई वस्तु देखकर अपने आपको भूल जाते हैं।

प्रेमियों के नेत्रों के सामने प्रतिक्षण नई नई प्रदर्शनी हुआ करती है। सांसारिक प्रदर्शनी प्रतिक्षण अपना बिस्तर बिछाती है और फिर झट उसे समेट लेती है। जो लोग सूक्ष्म दृष्टि से इस प्रदर्शनी का निरीक्षण करते हैं, उनकी पैनी दृष्टि संसार की तुच्छ रमणीयता से भी कुछ सार-संकलन कर लेती है। प्रेमी की आँखें यदि कहीं चिनगारियाँ देख पाती हैं, तो उन्हें अग्नि-ज्वाला का ध्यान हो आता है। यदि वे वारिविन्दु देख पाती हैं, तो अनन्त सागर याद पड़ जाता है। चमकीले तारे देखकर उसी अखंड ज्योति के कण स्मरण हो आते हैं। सचमुच, उसी सौन्दर्य्य-निकेतन का एक-एक करुणा-कण पाकर संसार की सारी वस्तुएँ नेत्ररंजक प्रतीत होती हैं।

जिसकी दृष्टि सूक्ष्म है, वह तो 'पश्यतोहरः' की भस्म-राशि से भी स्वर्ण-कण निकाल लेता है। एक कहानी भी मशहूर है कि एक मुर्ग ने कूड़े को कुरेदकर मोती पाया था। हाथी को सिर पर धूल डालते देखकर एक कवि को सूझ गया कि 'हाथी उसी धूल की तलाश में है, जिसके स्पर्श से जड पत्थर में

भी जान आ गई थी।' नगाड़े की आवाज़ सुनकर एक प्रेमी ने कह दिया था कि 'यह दमामा नहीं बजता, बल्कि पुकार-पुकारकर यही कहता है कि ईश्वर को भूल जाने से पशु होकर भार-वहन करते-करते जान गई और अब मरने के बाद भी चाम कूटा जा रहा है।' प्रेमियों की अन्तर्दृष्टि की गति सर्वतोमुखी है। वह अवाधित गति से संसार की प्रत्येक वस्तु की अन्तर्दशा देख लेती है। उनका कहना है कि संसार की सभी नयनाभिराम वस्तुएँ उसी प्रभु की प्रभा पाकर परस्पर अनन्य हुई हैं। वे यह भी कहते हैं कि यदि संसार में प्रतिक्षण होती रहने वाली प्रदर्शनियों की विचित्रता पर ध्यान दिया जाय, तो उस अखंड-ब्रह्मांड-नायक के अचिन्तनीय लीला-रहस्य का स्थूल अभिप्राय कुछ-न-कुछ अवश्य अवगत हो सकता है।

२

आषाढ का महीना था। देखते ही-देखते आसमान ने गिरगट की तरह रंग बदल दिया। आसमानी किले पर गरजते हुए मेघों का धावा शुरू हो गया। हीरालालबाबू पटना जाने के लिये ताबड़तोड़ तैयारी कर रहे थे। आसमान का रंग देखते ही उनका प्रोग्राम बिगड़ गया! बिजली की चमक दमक और तड़प झड़प सुनते ही उन्होंने कपड़े उतार दिये। हवा के झोंके से बेपनाह हुई बूँदियों ने बरामदे के कोने कोने तक में शरण ले ली। फिर एकाएक बूँदा-बाँदी बन्द हो गई। पंजाब-मेल के आने में अब सिर्फ पन्द्रह मिनटों की देर थी। हीरालाल-

बाबू फिर कपड़े पहनकर तैयार हो गये। उनके फूलदार मख-मली जूते जल्दीबाज़ी करने के लिये 'मचर-मचर' चिल्ला रहे थे। बाहर की बरसाती में शानदार लैंडो-जोड़ी खड़ी थी। हीरालालबाबू जोड़ी पर सवार होते ही गाड़ीवान से बोले—"डाकगाड़ी से पाँच मिनट पहले पहुँचाना होगा। खूब तेज़ी से ले चलो।"

रबर-टायरवाली जोड़ी ने, बात-की-बात में, चुपके-से स्टेशन पहुँचा दिया। हीरालालबाबू शान से उतरे और जाकर अव्वल दरजे के वेटिंग-रूम मे आराम-कुर्सी खींचकर डट गये। हम तो जोड़ी से उतरते ही टिकट-घर में जा घुसे। हम टिकट ले जाकर हीरालालबाबू को दे ही रहे थे कि इतने में एक घंटी बजी और प्लाटफार्म पर जो जन-समुद्र उमड़ रहा था, उसमें खलबली-सी पैदा हो गई। ज्वारभाटा की तरह हाहाकार करती हुई डाकगाड़ी आ पहुँची।

पंजाब-मेल का अव्वल दरजा भी स्वर्ग का नमूना ही है। जैसे गङ्गा और हिमालय का मानचित्र पुस्तकों मे, वैसे ही पंजाब-मेल के अव्वल दरजे में बहिश्त का नक्शा मौजूद है। उसे अलका-पुरी या अमरावती का नमूना कहना कोई बेजा बात नहीं है। हीरालालबाबू को अव्वल दरजे में चढ़ाकर हमने इंजिन से गार्ड के डब्बे तक दो-दो बार चक्कर लगाया। हरएक खाने की चीजों पर दुहरी, पर गहरी नहीं, नजर डालते हुए हम चक्कर काट रहे थे। बिजली-बत्तियाँ जल रही थी। बिजली के पंखे दनादन चल रहे थे। खिड़कियों की राह से जितनी आँखें स्टेशन की ओर झाँकती थीं, सब पर सुनहरी कमानीवाले चश्मे चढ़े थे। कुछ

साहब, झालरदार साफ तकियों के सहारे, कमर के बल टेक कर, समाचारपत्रों के पन्ने उलट रहे थे। किसी के दिमाग़ में 'एमडन' तैर रहा था। किसी के दिमाग़ में 'दमदम' की गोलियाँ दनदना रही थीं और कोई 'हाविटज़र' तोप की गोलों की गड़-गड़ाहट सुन रहा था। एक अँगरेज-युवती, जिसके रेशमी बालों में बनावटी गुलाब के फूल गुम्फित थे, एक अँगरेज-युवक के साथ, हाथ में हाथ मिलाकर, टहल रही थी। कभी दोनों हँसते-हँसते अपनी-अपनी घड़ियाँ मिलाते थे, और कभी अपने-अपने चश्मे बदल-बदलकर परस्पर आँखों पर आँखें चढ़ाते थे!

दृष्टि और दिमाग़ का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिये, कमल-कोरक देखते ही हमारे दिमाग़ में मराल-मालामंडित पद्माकर का रूप अङ्कित हो जाता है। हम देखते हैं गुललाला और याद करते हैं गुलशन। हम देखते हैं प्रस्तरमयी प्रतिमा और ध्यान धरते हैं सच्चिदानन्द भगवान् का। हम देखते हैं ईंट-पत्थर और स्मरण करते हैं गगनारोही अट्टालिका। हम देखते हैं रेशम के कीड़े और याद पड़ जाता है कौशेय वस्त्र! अद्भुत व्यापार है!

कुम्भकार-रचित विविध-रंग-रंजित देव-मूर्त्तियाँ हमारी शीशे की आलमारियों में सजी हुई हैं। उन्हें देखकर हम भगवान् श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र तथा श्रीचन्द्रमौलि आदि का ध्यान कर लेते हैं और उन्हे पूजकर हम अपनी भक्ति की भी तृप्ति कर लेते हैं; पर उस कुम्हार के मृत्तिका-लिप्त हाथों की पूजा करने का तो हम कभी विचार भी नहीं करते, जिनकी करामात की बदौलत हम अपनी भक्ति सार्थक कर पाते हैं; उसके मृत्तिका-लिप्त

शरीर को देखकर हम इतनी भी शिक्षा नहीं ग्रहण करते कि—

ख़ाक से उल्फ़त हुई है फिर तो मिलना ख़ाक में।
इत्र मिट्टी का लगाना चाहिये पोशाक में॥

३

अकस्मात् चन्द्रमोहन बाबू से भेंट हो गई। भेंट होते ही, बड़े आह्लाद के साथ, हमें गलबहियाँ में पकड़कर, अव्वल दर्जे के एक डब्बे के सामने ले जाकर, अलग से ही इशारा करके, बोले—"देखो, ऐसी कान्त-कलेवरा लावण्य-यष्टिका तुमने कभी देखी थी? मैं तो प्रतिदिन संध्या-समय टहलते-टहलते स्टेशन चला आता हूँ। प्रत्येक दिन डाकगाड़ी में एक-से-एक सुन्दर रूप देखता हूँ। किन्तु ऐसा रूप आजतक मैंने कभी डाकगाड़ी में नहीं देखा था। अहा! कैसा मनोमुग्धकर रूप है! यह, मानस-सरोवर की कमल-कलिका अथवा नन्दन-कानन का विकसित पारिजात-स्तवक भले ही न हो; पर उस 'परम रम्य आराम' की पाटलि-पटली तो अवश्य है। श्वेत साड़ी ऐसी शोभती है जैसे बगले के पंख में मछली लपेटी हुई हो। हरे रंग के रेशमी फूल साड़ी मे टँके हुए हैं, उनकी शोभा कहते नहीं बनती। सिर पर से होता हुआ अंचल, कमर तक पहुँच, कमरबन्द से कस-कर, बेकस हो गया है! मालूम होता है कि मन बाँधने के लिये ही कमर कसकर तैयार है! वक्षःस्थल पर रेशमी फूलों की झालर तो यों जान पड़ती है, मानों पर्वत-शृङ्ग पर मृदुल लतिका आरोहण कर रही हो।"

एक भद्र महिला के सम्बन्ध में ऐसी अनभिमत बातें सुनकर हमसे चुप न रहा गया। हमने उनकी गलबहियाँ छुड़ाकर, उन्हे फटकारते हुए कहा—"चन्द्रमोहन बाबू ! आपके मुख से ऐसी अवाञ्छनीय बातें सुनने की आशा हमें नहीं थी। यदि आप वस्तुतः नित्य ही ऐसे अभद्र कार्य के लिये स्टेशन आया करते हैं, तो यह बड़ी ग्लानि और लज्जा का विषय है! आप गिरि-शृंग पर लतारोहण देखकर इतना मोहित हो गये—इसका एक कारण है। यदि आप कभी उस कोटि-कन्दर्प-दर्पहारी के मदन-मोहन रूप का ध्यान किये होते तो—

चरण-कमल-अवलम्बित राजित बनमाल।
प्रफुलित है-है लता मनो तरु चढ़ी तमाल॥

❀ ❀ ❀ ❀

उन्नत बिसाल हृदय राजत है, ता पर मुक्ता-हार री।
मानहुँ साँवर-गिरि ते सरिता, अध आवत द्वैधार री॥

'सूर' के इन सरस पदों को भूलकर आप इस 'लतारोहण' पर लट्टू नहीं होते।" किन्तु हमारी बातों को हँसी में उड़ाकर चन्द्रमोहन बाबू ने कहा—"अरे भाई ! तुमने उर्दू या अँगरेजी की कविताएँ नहीं पढ़ी हैं। नहीं तो तुम ऐसी नफीस सूरत देख-कर जरूर ही कह उठते कि—

इलाही कैसी-कैसी सूरतें तूने बनाई हैं।
हर-एक सूरत कलेजे से लगा लेने के क़ाबिल है॥

देखो, अपनी सौन्दर्य्य-गर्व-गरिमा से यह बिजली की रोशनी को भी मात कर रही है। जब हँस देती है तब दन्त-द्युति देख-कर बिजली-बत्ती भी लज्जित हो जाती है! इसके हाथ का रेशमी

रूमाल कभी स्वेद-विन्दु पीकर अपनी तृषा शान्त करता है और कभी कमर को चूमकर निहाल होता है। मुझे तो महाकवि शेक्सपियर के रोमियो की तरह यह अभिलाषा होती है कि—'Had I been the gloves to rest on those cheeks'—किन्तु क्या करूँ? अभाग्यवश आँखें सेंककर ही रह जाना पड़ता है!"

इतने ही में गार्ड ने सीटी बजाई। उसने सिर से ऊँचा उठाकर हरी रोशनीवाली लालटेन हिला दी। स्टेशन-मास्टर-बाबू 'खलासी' 'खलासी' 'स्टार्टर' 'स्टार्टर' चिल्लाते हुए अपने कमरे से बाहर निकल आये। खलासी ने 'स्टार्टर' दे दिया। दीवार में एक कटोरा-सा घंटा लगा हुआ था। स्टेशन-मास्टर ने, उसके नीचे लटकते हुए एक तार को, तीन बार खींचा। 'टन्' 'टन्' 'टन्' आवाज़ हुई। उधर इंजिन ने जोर से सीटी दी। भक-भक करती हुई गाड़ी खुल गई। चन्द्रमोहन बाबू के सुख की मिसरी घुल गई! उधर गाड़ी छूटी, इधर तबीयत टूटी! कुछ दूर तक वे दौड़े; पर मृगतृष्णा से भी कहीं किसी की प्यास बुझी है? वे प्लाटफार्म के पूर्वीय सीमान्त पर हताश होकर बैठ गये! उनकी आँखों के सामने हरी-हरी रोशनियाँ थीं; पर उनका हृदय हरा-भरा नहीं था। उनकी दिवाली का देखते-देखते दिवाला निकल गया! धन्य संसार की क्षणिक प्रभा!!

४

पटने से हीरालालबाबू आ गये। एक दिन उनके साथ बैठकर हम 'जलपान' कर रहे थे। रसगुल्ले उड़ रहे थे, साथ

ही गुलछर्रे भी उड़ते थे। तबतक चन्द्रमोहन बाबू आ गये। हीरालालबाबू ने उन्हें बड़े सम्मान से अपने पास बैठाया। हमको उस दिन की बात याद पड़ गई। हम मुस्कराने लगे। हीरालालबाबू ने पूछा—"क्या मन-ही-मन मुस्करा रहे हो? चन्द्रमोहन बाबू को देखते ही तुम चुप रहकर आप-ही-आप हँस रहे हो; माजरा क्या है? जरूर कुछ दाल में काला है।" उनकी ऐसी बात सुनकर चन्द्रमोहन बाबू का चेहरा उतर गया। वे लगे बात टालने। हमने भी रहस्योद्‌घाटन करना उचित नहीं समझा। इसलिये हमने दूसरा ही प्रसङ्ग छेड़ दिया। बात का रुख पलटते ही चन्द्रमोहन बाबू फिर चहकने लगे। थोड़ी देर तक कुछ इधर-उधर की होती रही। गप-शप के बाद, हीरालाल-बाबू के चले जाने पर, वे दिल खोलकर अपने मनोगत भावों को स्पष्ट व्यक्त करने लगे।

वे एक कृतज्ञ की तरह बोले—"भाई! तुमने विश्व-कल्याणकारी परमात्मा की प्रेरणा से उस दिन जो उपदेश दिये थे, वे मेरे-जैसे मलिन-मना मनुष्य को वैसे ही मिले जैसे भाग्य-वान् को समुद्र-तट पर पड़े हुए रत्न अनायास मिल जाते हैं। उन उपदेशों का अमृताञ्जन मेरे नेत्रों के लिये कितना सदुपकारक हुआ, सो केवल मैं ही समझ सकता हूँ; कहकर समझा नहीं सकता! सचमुच, यदि इन आँखों में उस लावण्यार्णव लोक-ललाम घनश्याम की छवि-छटा का एक छींटा भी पड़ा होता, तो ये आँखें कभी क्षुद्र-वीचि-मालिनी हावभावावर्त्त-धारणी नदियों में मज्जन करना पसन्द नहीं करती। व्रजवासी विहङ्ग-गण कभी नन्दन-वन के कल्पद्रुम का स्वप्न भी नहीं देखते। द्रुम-मौलि-

निवासशील शुक-सारिकाएँ, खपरैलों पर फैली हुई कद्दू-करैलों की बेल की ओट में, एक क्षण भी नहीं रहतीं। अनन्त नील गगन में जलधर-यूथ देखकर नृत्य करनेवाले मयूर कभी नीले मखमल के चँदोवे के नीचे नहीं नाचते। अब तक मैं समझता था—

'विश्लेषाय सरोजसुन्दरदृशामास्ये कृता दृष्टयः'

किन्तु शोक! महाशोक!!

'चिरं ध्याता रामा क्षणमपि न रामप्रतिकृतिः
परं पीतं रामाधरमधु न रामांघ्रिसलिलम्।'

चन्द्रमोहन बाबू का आत्मज्ञान देखकर हम आत्मविस्मृति में डूब गये। हमने कहा—"चन्द्रमोहन बाबू! इस समय पश्चात्ताप के आँसुओं ने आपका अन्तर्घट पवित्र कर दिया। बहुत दिनों का जमा हुआ अन्तर्मल सुविचार की अन्तस्सलिला में धुल गया। आपकी इस अन्तःशुद्धि ने हमारा अन्तस्ताप मिटा दिया। भगवान् करें, आप ही की तरह हमारे देश के अनेक 'रईसों के सपूत' अपना मनोमल पश्चात्ताप के पुण्य प्रवाह में प्रक्षालित कर डालें और अपनी अन्तर्गति की पवित्रता अन्तर्यामी भगवान् को दिखाकर यह प्रतिज्ञा करें—"भारतीय आदर्श का ध्यान रखते हुए आज से हम प्रत्येक महिला को माता-तुल्य मानेंगे।"

* * * *

सबसे बड़ा गौरव यही तो है हमारे ज्ञान का—
मानें चराचर विश्व को हम रूप उस भगवान् का।

ईशस्थ सारी सृष्टि हममें और हम सब सृष्टि में,
है दर्शनों में दृष्टि जैसे और दर्शन दृष्टि में।
भगवान कहते हैं स्वयं ही, भेद-भावों को तजे,
है रूप मेरा ही मुझे जो सर्व भूतों में भजे।
जो जानता सबमें मुझे सबको मुझी में जानता,
है मानता मुझको वही, मैं भी उसी को मानता॥

—मैथिलीशरण

हतभागिनी चन्द्रतारा

प्रेम में मैंने वचन हारा है उनके वास्ते,
प्रेम का जो भाव है, सारा है उनके वास्ते।
सुख से बढ़कर दुख मुझे प्यारा है उनके वास्ते,
यह शरीर इस जीव ने धारा है उनके वास्ते।
छोड़कर यह देह जब परलोक में यह जायगा,
फिर भी उसके प्रेम में डूबा हुआ ही पायगा।

—मायल

† † † †

What will not woman, gentle woman, dare;
When strong affection stirs her spirit up.

—*Southey.*

The rose is fairest when it is budding new,
And hope is brightest when it dawns from fears
The rose is sweetest washed with morning dew,
And Love is Loveliest when embalmed in Tears.

—*Scott.*

१

षोडशी चन्द्रतारा बैठी-बैठी नखों से पृथ्वी खोद रही थी। नरम-नरम कलाइयों में शरबती चूड़ियाँ थीं। बूटेदार 'चिकन' की चुस्त नीमास्तीन शरीर से सटी हुई थी। मखमली कत्था पाढ़ की शान्तिपुरी मिहीन धोती थी।

"झीन बसन महँ झलकइ काया।
जस दरपन महँ दीपक-छाया॥"

पीठ पर खुले केश पड़े हुए थे, मानों सुमेरु-गिरि के पृष्ठ-देश पर जलद-जाल फैला हुआ हो। सुराहीदार गरदन में एक जड़ाऊ सुनहरी कंठी थी। दीप-शिखा के आकार के-से दो नग-जड़े कुंडल-किशोर कानों में शोभा पा रहे थे। नाक में यवा-कार चपल नासा-मौक्तिक और अङ्ग का गौर-वर्ण चन्दन-सा उज्ज्वल था। वह ज्योत्स्ना की उभार, प्रेम की प्रभा, शान्ति की शिला और चिन्ता के चित्र-सी मालूम होती थी। जान पड़ता था, जैसे काश्मीरी गुलाब में सौकुमार्य्य और सौन्दर्य्य तथा माधुर्य्य का एकीकरण घटित हुआ है, वैसे ही उसमें शोभा और सुशीलता तथा सरसता का समन्वय हुआ है।

उसके पास ही उसकी बूढ़ी माता बैठी हुई बक-झक कर रही थी। कोई सुननेवाला न था; पर वह झक में बकती चली जाती थी—"मेरी तो यही एक पेट-पोंछनी बेटी है। आगे-पीछे और कौन है? इसके विना अकेली कैसे जीती रहूँगी? भगवान् ने मेरी बेटे की साध इसी बेटी से पूरी की है। जिस दिन यह

आँखों से ओट हो जायगी उस दिन मेरी बात पूछनेवाला भी कोई न रहेगा। जब मैं दुनिया से उठ जाऊँगी तब तो इसकी कोई खोज-खबर भी न लेगा। इसके दरवाजे पर यहाँ से एक कुत्ते को भी कोई न भेजेगा। ससुराल में ही इसकी सारी जिन्दगी तमाम होगी। फिर कभी यह 'शाहपुर' का मुँह नहीं देखेगी। भगवान् ने पत्थर पर की दूब की तरह एक बेटी भी दी, तो उसका विवाह ले जाकर पहाड़ी-तली में करा दिया। अगर जीती-जागती बची भी रहूँगी, तो भर-नजर देखने के लिये तरसती ही रहूँगी। भगवान् ने स्वामी, पुत्र, भाई, भतीजा, सब छीन लिये। कोई ऐसा नहीं जो मेरा चोला छूटने पर, इसे तोष-बोध देने के लिये भी, यहाँ से जायगा। मुँहजली सास रोज-रोज गौने की साइत ही लिख-लिखकर भेजती है। हा! किसी का दुख-दर्द दूसरा नहीं समझता। उसको तो भगवान् ने दूध-पूत से निहाल किया है, पर मेरे तो 'मूलधन कठौती' यही एक बेटी है—निर्धन के धन राम गोसाईं! भला, बाँझ क्या जाने प्रसूती की पीर? जब उस निगोड़ी को भी बेटी की बिदाई करनी होती, तब न वह समझती कि यह कितना कठिन काम है। जैसे उसकी आँखों का तारा एक ही बेटा है, वैसे ही मुझ अभागिन की आँखों की पुतली भी तो यही एक बेटी है। न भेजने का नाम लेने पर वह अङ्गार पर लोट जाती है; मगर यह नहीं जानती कि इसके चले जाने से मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा जायगा।"

बुढ़िया बकती थी, सिसकती थी और कभी सिर पीटकर आह मारती थी। बेचारी चन्द्रतारा भी, ठंढी साँस लेकर, आँसू

के घूँट पी जाती थी। जब रहा नहीं जाता था तब झुँझलाकर कहती थी—"तू किस लिये बिना बात-की-बात बोलती रहती है? हाय-हाय करने से कोयले से लिखी हुई किस्मत सोने के अक्षरों मे लिख जायगी? नहीं देखती कि विधाता का करतब सब ठौर उलटा ही है? उसने बेर को मीठी और कड़वी नीम को हित-कारिणी ओषधि बना दिया। चाँद के मुख में भी कालिमा पोते बिना वह नहीं रहा। गुलाब को काँटों की सेज पर सुला दिया। कमल को कीचड़ में गाड़ दिया। समुद्र को खारा बना दिया। जंगल मे 'बन-डाढ़ा' लगा दिया। सुख के दिनों मे खंजरीटों के पंख लगाकर दुःख के दिनों में मुर्गों के डैने जोड़ दिये। उसने सब जगह तो सरासर अन्धेर ही किया है। इसलिये झाँखना बेकार है। जो बात अपने बल-बूते से बाहर की है, उसके लिये दुखड़े का पचड़ा गाते रहने से क्या लाभ? मेरे ही बिना तेरा घर सूना हुआ जाता है, तो ले, मैं तुझे छोड़कर अब कहीं नहीं जाती। तू जहाँ कहेगी वहीं चुपचाप, मन मारे, सूधी गाय की तरह बैठी रहूँगी। तेरा दुःख मुझसे देखा न जायगा। जो कुछ भली-बुरी अपने ऊपर बीतेगी उसे, तुझे सुखी देखकर, सहती रहूँगी। तू वाम विधाता की बाँकी टाँकी नहीं मिटा सकती; नाहक दिन-रात रो-रोकर बची-बचाई आँखों को भी फोड़ रही है! दुःख का चर्खा कातना छोड़कर चुप रहा कर। जाही बिधि राखै राम वाही बिधि रहिये।"

इतना कहते-कहते एक दिन वह बिलखकर रो उठी। हृदय में भीषण ज्वालामुखी का प्रस्फोट हुआ। शरीर आग्नेय पर्वत की तरह जल उठा। आँखों के आँसू रोकते-रोकते दिल का दर्द

दुगुना हो गया। धड़कन से छाती दलकती रह गई। काँपते-काँपते कलेजा मुँह को आ गया।

२

शाहाबाद (आरा) ज़िले का 'सहसराम' नगर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। उसी नगर के निकट 'अमराई' नाम की—कायस्थों की—एक मशहूर बस्ती है। वहीं चन्द्रतारा की शादी हुई थी। गाँव का नाम तो 'अमराई' है; पर वसन्त-काल में वहाँ एक भी हरा-भरा पल्लव नहीं देख पड़ता! विवाह में 'चन्द्रतारा' और 'वंश-लोचन', दोनों कमसिन थे। दोनों ही आप-आपके सुन्दर थे। वंशलोचन मंडप का मणि-दीप था, तो चन्द्रतारा अँधेरे घर का उजाला थी। बाल-विवाह की महिमा के कारण (!) दोनों ही यह नहीं जानते थे कि 'कोहबर' के सुख का स्वाद कितना सरस होता है। वास्तव में, जब तक वर और कन्या दोनों की अवस्था विवाह-जन्य प्रकृत आनन्द का सच्चा अनुभव प्राप्त करने योग्य नहीं रहती, तब तक रसाम्भोधर की पूर्ण वृष्टि किसी तरफ नहीं होने पाती।

विवाह हुए कई साल बीत गये। बूढ़ी माँ कभी गौने का नाम तक नहीं लेती। वंशलोचन की माँ, अपने घर में सुघड़ दुलहिन उतार लेने की लालसा से, दिन-रात व्यग्र रहती थी। तारा की सुन्दरता का सन्देश अमराई के लोगों के कानों तक पहुँच चुका था। टोले-मुहल्ले की लुगाइयाँ, बड़ी उत्सुकता से, वंशलोचन की माँ से पूछा करती थीं—"बहू की बड़ाई सुनते-सुनते तो कान पक गये। न जाने किस दिन 'मुँह-देखी' करके

कलेजा ठंढा होगा। अब तो अगर बुढ़िया अपनी बेटी न भेजे, तो वंशलोचन का दूसरा विवाह करा देना चाहिये। कब-तक कोई बाट जोहे !" पास-पड़ोस की स्त्रियों की बात सुनकर, वंशलोचन की माँ, झुँझलाकर, अपनी समधिन पर आक्रोश की वर्षा करने लगती थी।

हिन्दू-विश्वविद्यालय बन्द होने पर जब-जब वंशलोचन बनारस से घर आता था, तब-तब उसके माता-पिता, बड़े प्रेम से बुढ़िया के पास गौने का दिन निश्चित करके भेजते थे। किन्तु वह ऐसा पेंच ऐंठती थी कि बराबर तरह-तरह के हेर-फेर करके गौने का दिन बैरंग वापस कर देती थी। दो लह-राती हुई स्नेह-सरिताओं का सङ्गम रोकने के लिये बुढ़िया बीच में विशाल-शैल-शृंखला-सी बन जाती थी। न जाने ऐसे गहन पर्वतों के लिये इन्द्र का वज्र कहाँ सोया रहता है !

३

वह बुढ़िया पाताल की डाइन थी। उसने बद-बदकर न जाने कितने घरों का काम तमाम कर दिया था। कितनों की माँग धोकर कोख जला डाला था। कितनों की सेज और गोद सूनी करके बसे-बसाये घरों को उजाड़ डाला था। उसके डर से वन-वन की चिड़ियाँ रोती थीं। किन्तु जितना टोना बुढ़िया जानती थी, उतना तो, बल्कि उससे भी बढ़कर, चन्द्रतारा ही जानती थी ! परन्तु दोनों के टोनों में आकाश-पाताल का अन्तर था। तारा के नोकदार नयनों में ही एक सलोना

टोना था। वह 'काम-वाण' और 'राम-वाण' दोनों का काम कर सकता था; पर 'लक्ष्य' से सामना भी तो हो ?

विधि-विपाक बड़ा ही विलक्षण है ! ऐसी हृदय-हीना माता के गर्भ से ऐसी सहृदय सुन्दरी ? लोहे की भीम मूर्त्ति से नन्ही-सी कनक-पुतली का आविर्भाव ? धन्य है सृष्टि-वैचित्र्य ! विषधर भुजङ्ग के मस्तक में दीप्तिशाली मणि ! सीपी के उदर में मञ्जुल मोती ! भिल्लवंश में शबरी-सी साध्वी ! कैवर्त्त-वंश-वैजयन्ती सत्यवती केवट की कन्या ! कंटकाकीर्ण शाखाओं मे गुलाब ! कँटीले मृणाल-तन्तुओं से जकड़ा हुआ जलज ! 'विधि-गति बड़ि बिपरीति विचित्रा', 'विधि-प्रपञ्च गुन-अवगुन साना', 'कनकौ पुनि पखान ते होई'—'पाट कीट ते होइ, तावे पाटम्बर रुचिर'।

† † † †

४

उर अभिलाष निरन्तर होई।
देखिय नैन परम प्रिय सोई॥
—'तुलसी'

तारा अबोध बालिका तो थी नहीं। बरसों से उसके कमनीय-कलेवर-कानन मे वसन्त ने बसेरा लिया था। यौवन-वसन्त-विभ्रान्त होने के कारण उसके कोमल हृदय पर सतत-गमनशील संसार का सिक्का जम गया था। उसके शरीर और मन की अब वह बीती दशा नहीं रही। सौन्दर्य-क्षेत्र में पुष्ट बीज उग

गये। हास्य की गति मन्द हो गई। चरणों की चंचलता चक्षुओं ने चुरा ली। प्राणों में पुलक का प्रवेश हो गया। बौरे हुए वसन्त-वल्लभ विटपी पर बैठकर जब वन-विहंगिनी वंशी बजाने लगती थी, तब उसे रोमाञ्च हो आता था। जब आकाश प्रेम-वारि-धारा से धरणी-तल को अभिषिक्त करता था, तब तारा के नेत्र उससे बाजी मार ले जाते थे। जब धरातल पर धवलोज्ज्वल कौमुदी छिटकती थी, तब उसकी अन्तरात्मा अन्तरङ्गी पीडा के अन्धकारपूर्ण पथ पर भटकती फिरती थी। पथ-प्रदर्शक का पता ही नहीं, अनुयायी अभागा क्या करे ?

आँखों ने अश्रु-समुद्र उमड़ा दिया था; पर आत्मा की प्यास नहीं बुझती थी। समुद्र की तरह पूर्णचन्द्र को अंकस्थ करने के लिये हृदय बाँसों उछल-उछलकर धरती में लोट जाता था, अन्तरात्मा उसे पुचकारकर उठाती थी, उसके धूलि-धूस-रित अङ्ग को प्यार से पोंछती थी; पर शान्ति कहाँ ? कौशल्या के क्रोड़ में किलकते हुए कोशल-किशोर कलाधर को करस्थ करने के लिये क्रन्दन करते थे; वह कहती थी कि अमूल्य रत्नों के प्रकाश-प्राङ्गण में खेलो। किन्तु चकोर क्या कोयले की आग खाकर चन्द्र-दर्शन की चोखी चाट छोड़ता है ?

५

न आँखों में बसा जो क्या,
भला मन में बसेगा वह ?
न दरिया मे हला जो वह,
समुन्दर में हलेगा क्या !
—'हरिऔध'

बलिहारी है बाल-विवाह की ! बचपन की देखी हुई सूरत आज चित्त पर चढ़ाये नहीं चढ़ती । चाहे लाख दिमाग दौड़ाया जाय, आकाश में कुसुम नहीं मिल सकता । जब मंडप और कोहबर में युगल जोड़ी मौजूद थी, तब न तो प्रेम की पक्की रोशनाई ही थी और न मदन-चित्रकार ही था । किसी को कड़ी कोरदार कनखी का कौशल मालूम ही नहीं था । दिल की दीवार पर तसवीर तो खींची नहीं गई, आँखों को बन्द कर दिमाग को चक्कर में डालने से क्या ? आँखों के सामने दिगन्त-व्यापिनी शून्यता झूल रही थी । कोई चित्रलेखा तो थी नहीं, जो हृदय का हाहाकार एक चित्र-पट में केन्द्रित कर देती । अदृश्य मूर्त्ति को भीतर लेने के लिये हृदय का कपाट खुला जा रहा था । चित्त-भित्ति पर चारु चित्र अंकित करने के लिये प्राण व्यग्र थे ।

स्नेह की स्याही, इच्छा की लेखनी और मदन-चित्रकार मौजूद; मगर वह मधुर मूर्त्ति कहाँ, जिसका चितचोर चित्र अंकित किया जाय ? मानस-सरोवर में कोई साकार सरोज विकसित नहीं, चंचल-चित्त-चंचरीक को कहाँ चैन मिले ? हृदयाकाश में पूर्णेन्दु का अभाव, चित्त-चकोर दत्तचित्त होकर किसकी सुधा-माधुरी हृदयंगम करे ? समुद्र-तल के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी, बिना जहाज के, कहाँ बैठकर विश्राम करे ?

६

चन्द्रतारा की प्यारी सखी जयन्ती, दो-तीन साल के बाद, अपनी ससुराल से आई थी । खुली छत पर दोनों बैठी थीं; दोनों की अविरल प्रीति चटकीली चाँदनी में खिल रही थी ।

चूने से पुता हुआ पक्का मकान, चाँदनी रात में, बिल्लौरी महल का भ्रम पैदा कर रहा था। दोनों सखियाँ, सामाजिक बन्धनों की जटिलता पर, अपने-अपने स्वाभाविक हृदयोद्गार प्रकट कर रही थीं।

जयन्ती ने बातों-ही-बातों में कहा—"प्यारी सखी! तेरी माता तुझे अच्छे-अच्छे भोजन, अच्छे-अच्छे कपड़े और सुख के सभी अच्छे-अच्छे सामान देती है। तुझे बिना खिलाये वह नहीं खाती! वह देखती रहती है कि कभी किसी कारण से तेरा मुख तो नहीं कुम्हलाया। वह पूछती रहती है कि तुझे कभी किसी वस्तु के अभाव से कष्ट तो नहीं होता। तेरी तबीयत तनिक भी खराब होती है, तो वह बेहोश-सी हो जाती है। भला कह तो, माता के ऐसे अनूठे प्यार को तू क्यों बला समझती है? क्या इसीलिये कि तुझे सयानी होने पर भी वह ससुराल नहीं भेजती? मैं यह भी जानती हूँ कि उसका हठ ऊँट की पकड़ हो गया है; पर क्या उस हठ में निष्ठुरता है? नहीं; उस हठ-रूपी मठ में मातृ-हृदय-रूपी संन्यासी है, जो संसार से विरक्त हो, वात्सल्य का कषाय-वस्त्र पहनकर, अटल भाव से बैठा हुआ है!"

तारा ने कहा—"प्यारी सखी! मेरे हृदय की अवस्था का अनुभव तुझे नहीं हो सकता। तेरे हृदय मे जो मूर्त्ति बसती है, उसकी प्रतिकृति अब तेरी गोद में मौजूद है। तू अब दो-दो प्याले अमृत पीती है; मैं एक ही प्याले में निष्ठुरता का विष और प्यार का अमृत मिश्रित करके 'पीती हूँ। तू संसार में प्रवेश कर चुकी है, मै उसके द्वार पर, न जाने कब से, सिर टकराती हूँ। पूर्णचन्द्र के अंक में बैठी हुई रोहिणी के लिये संसार में विष ही

कहाँ है ? तू अमृतमयी हो गई है, इसलिये तेरी नजर में संसार भी अमृतमय ही देख पड़ता है। मेरी दशा का दरिया तेरी कल्पना-पिपीलिका नहीं पार कर सकती। तेरा हृदय भुक्तभोगी नहीं है; अगर होता तो मेरा हृदय उसी को आलिङ्गित करके सुख-शान्ति का धनी बन जाता।"

जयन्ती बोली—"प्यारी सखी! घबरा मत। तेरे सुख के दिन हर घड़ी तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जो नयन-नलिन आज अश्रु-कुंड में डूबे रहते हैं, वे किसी दिन जल-तल भेद कर किसी मानस-सरोवर के हृदय के हार बनेंगे। जिन कानों में आज कल-कंठ-कूजन भी कर्कश मालूम होता है, उन्हीं कानों में एक दिन बिजली की कड़क भी मधुर वीणा-सी बज उठेगी। जो जिह्वा अहर्निश नाम-माला जपते-जपते कृश हो गई है, वह किसी दिन अमृत-कुंड की मीन बनी रहेगी। जो हृदय आज विदीर्ण हुआ जा रहा है, वह एक दिन किसी हृदय पर हार-सा झूलता रहेगा। जो बाहु-लता आज वायु-विमर्दित वल्लरी-सी क्षीण हो रही है, वह एक दिन किसी कमनीय कंठ में कनक-पाश-सी पड़ी रहेगी। जो मुख-कमल आज मुर्झाया हुआ है, वह एक दिन किसी सूर्य से आँख मिलाकर खिल उठेगा और भ्रमरों का आनन्द-केन्द्र बना रहेगा...।"

बीच ही में बात काटकर तारा बोली—

"सजनी मन पास नहीं हमरे,
तुम कौन को का समझावति हो ?"

* * *

"जिय पै जु होइ अधिकार तो बिचार कीजै,
लोक-लाज भलो-बुरो भले निरधारिये।

नैन स्रोन कर पग सबै परबस भये,
उतै चलि जात इन्हैं कैसे कै सम्हारिये।
'हरीचन्द' भई सब भाँति सों पराई हम,
इन्हे ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये।
मन मे रहै जो ताहि दीजिये बिसारि,
मन आपे बसै जामें ताहि कैसे कै बिसारिये।"

"लो देखो, आज यह एक पत्र आया है। न जाने किसने काशी से भेजा है। इसमें दो ही पंक्तियाँ हैं; पर उनके एक-एक अक्षर मेरे हृदय को अनुप्राणित कर रहे हैं।" जयन्ती ने पत्र लेकर देखा, उसमे इतना ही लिखा था—

"न जाने हम किस उमीद पर दिल शाद करते हैं।
न देखा जिसका मुँह हम उसीको याद करते हैं॥"
—तुम्हारा 'लोचन'

तारा के हृदय से बढ़कर उसका प्रभाव जयन्ती के हृदय पर पड़ा। बड़ी देर तक जयन्ती मौन रही। उसका मानस-मन्दिर प्रेम के उद्योत से उद्भासित हो उठा। उसकी नस-नस में प्रेमोद्रेक भर गया। उसका चित्त चंचल और चिन्तित हो गया। वह दूसरे दिन पत्रोत्तर लिखवा देने की बात कहकर, तारा को साश्रु लोचनों से देखती हुई, घर चली गई!

७

पावा परम तत्त्व जनु जोगी।
अमृत लहेउ जनु सन्तत रोगी॥
भयउ हृदय आनन्द उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥
—'तुलसी'

हिन्दू विश्व-विद्यालय में पूर्णिमा के दिन बड़ी चहल-पहल थी। महात्माजी का व्याख्यान होनेवाला था। वंशलोचन दीवारों पर फूल-पत्तियाँ सजा रहा था। सहपाठियों में चुहलबाजी हो रही थी। रह-रहकर मोद-विनोद-जन्य अट्टहास से समस्त व्याख्यान-शाला प्रतिध्वनित हो उठती थी। इसी बीच मे एक सहपाठी ने, हँसते हुए आकर, वंशलोचन के हाथ में एक चिट्ठी दी। लाल लिफाफे पर एक रंगीन चित्र था। उसमें एक गुलाब के फूल पर भौंरा मँडला रहा था। उस चित्र को बड़े आग्रह से सहपाठियों ने देखा। फिर एक बार अट्टाट्टहास से समूचा 'हॉल' गूँज उठा। पत्र को जेब में रखकर वंशलोचन अपने काम में लग गया; पर पत्र पढ़ने के लिये उसका हृदय इतना उत्कंठित हो गया कि वह अपने साथियों की आँखें बचाकर धीरे से निकल भागा।

एकान्त में जाकर, काँपते हुए हाथों से उसने वह लिफाफा खोला। पत्र निकालते ही उसे अपनी उमड़ी हुई आँखो से लगा लिया। हृदय-स्पन्दन सघन हो उठा। अनाड़ी आँसुओं ने अनर्थ कर डाला। बिना पढ़े ही पत्र को जेब में रखकर वह आँसुओं से मुँह धोने लगा। आँसुओं का अरमान पूरा हो गया, वंशलोचन का अरमान यों ही रह गया! बड़ी देर तक अपना आपा भूलकर वह संज्ञा-हत की भाँति वहीं बैठा रहा। उसके हृदय-देश की चिन्ता-नदी शोकावर्त्त-परिपूर्ण थी। उसकी आत्मा उसमें डूबते-डूबते वाह्यज्ञान-शून्या हो गई। वह पत्र पढ़ने की सुध भूल गया। अङ्ग शिथिल हो गये। आँखों में झपकियाँ आने लगीं।

कुछ घंटों के बाद, जब उसकी नींद खुली तब, उसे महात्माजी का व्याख्यान याद पड़ा। वह दौड़ने की इच्छा करने लगा, पर दौड़ न सका। वह धीरे-धीरे कालेज की ओर चला। जब उसने अपनी अलसौंही आँखों को पोंछने के लिये जेब से रूमाल निकाला तब अनायास वह प्रेमपत्र भी हाथ में चला आया। पत्र में लिखा था—

"सुख और चैन भी तुम हो, करार भी तुम हो।
मेरे आधार भी तुम हो, सिंगार भी तुम हो॥
ज़ो तुम हो मेरे तो सारा जहान मेरा है।
नहीं तो, कुछ भी नहीं, हर तरफ़ अँधेरा है॥"
"छूट जायें गम के हाथों से जो निकले दम कहीं।
ख़ाक ऐसी ज़िन्दगी पर तुम कहीं औ' हम कहीं॥'

—एक हृदयाकाश की ध्रुव-'तारा'

८

'आरा' जिले के दक्षिण पूर्व-भाग में, यक्षिणी भवानी का एक प्राचीन मन्दिर, घने झाड़खंड के बीच में, विराजमान है। चैत्र-नवरात्र में वहाँ, हर साल, एक मशहूर मेला लगता है। प्रति वर्ष असंख्य स्त्रियाँ, अपनी मन्नतें पूरी करने के लिये, वहाँ जाती हैं। जयन्ती भी, अपनी पड़ोसिनो के साथ, अपने नव-जात पुत्र की मन्नत पूरी करने के लिये, जाने को तैयार हुई। देखादेखी तारा की भी इच्छा हुई। उसने अपनी माता के सामने इच्छा प्रकट की। माता ने टोले-मुहल्ले की स्त्रियो और जयन्ती के साथ, केवल दिन-भर के लिये, मेले में जाने की आज्ञा दी। माता का आदेश शिरोधार्य करके 'झंपान-गाड़ी' पर अपनी सहेली जयन्ती के साथ तारा मेले में चली।

चलने के समय बुढ़िया ने चेतावनी दे दी थी कि 'मेले-ठेले में उचक्के-उठाईगीरे बहुत घूमते हैं। बड़े घराने की बहू-बेटी की तरह, सँभलकर, रहना; स्वच्छन्द मत घूमना। नहीं तो बड़ी शिकायत होगी और प्रतिष्ठा में बट्टा भी लगेगा। तुम्हारा सिन्दूर देवीजी को माना गया है, चढ़ाकर प्रसाद ले लेना।'

इतना कहते ही, एक लड़के ने, तारा के दक्षिण भाग में, जोर से छींका। बुढिया उसे मारने दौड़ी; पर भावी को कौन मेट सकता है? जो होनी होती है, वह होकर ही रहती है। बुढ़िया ने सैकड़ों घर फूँककर तमाशे देखे थे, और जब अपने घर के जलने की सूचना मिली, तब घबराकर एक निर्दोष बालक को मारने दौड़ी!

इधर 'शाहपुर' से तारा चली थी और उधर 'अमराई' से वंशलोचन भी मेले में चला! अपने गाँव के पास का इतना बड़ा मेला दिखाने के लिये वह हिन्दू-विश्वविद्यालय के कई सह-पाठो विद्यार्थियों को भी अपने साथ लेकर चला था। मेले में पहुँचकर वंशलोचन, अपने साथियों सहित, सेवा-समिति के स्वयंसेवकों मे मिल गया! वंशलोचन और उसके साथियों की स्तुत्य सेवा-प्रणाली, अदम्य उत्साह और अभिनन्दनीय साहस तथा निश्चल निर्भीकता देखकर स्वेच्छा-सेवकगण और सेवा-समाज-संचालक-महाशय अतिशय आप्यायित हुए। वंशलोचन के ललित लोचनों ने न जाने कई बार अपनी आँखों की 'तारा' को देखा होगा; पर मेले मे कौन किसको पहचानता है? संसार में ऐसे असंख्य मनुष्य रोज हमारी नज़रों के सामने से गुज़रते हैं, जिनसे किसी-न-किसी दिन अवश्य ही किसी तरह का हमारा

सम्बन्ध स्थापित हो जायगा या हो जाता है; पर क्या वे हमें या हम उन्हें पहचानते हैं? फिर मेला मायामय संसार से क्या कम है!

९

दुष्टों की दृष्टि-शृंखला को सगर्व तोड़ती हुई दोनो सखियाँ देवी-दर्शन के निमित्त मन्दिर में गईं! वहाँ एक पाजी पंडे के पंजे में फँसने से दोनों को बचाकर वंशलोचन ने उन्हें ठीक ठिकाने पहुँचा दिया। शाहपुर की एक स्त्री 'वंशलोचन' को एक टक से निहारने लगी और शेष स्त्रियाँ उसे असीसने लगी। वंशलोचन के चले जाने पर उस स्त्री ने कहा—"इस लड़के की शक्ल-सूरत कदाचित् परिचित मालूम होती है! मुझे सन्देह है कि तारा का वर यही तो नहीं है।" जयन्ती ने हँसकर कहा—"हाँ-हाँ, मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है; इसीसे न बेचारा यहाँ तक पहुँचा गया है, वह पहचान गया, अपनी माता से कहे विना अब न मानेगा।" अपनी प्यारी सखी की बात सुनकर तारा ने हँसकर, त्योरी चढ़ाकर, झुँझलाहट के साथ कहा—"तू इसी लिये मुझे मेले में अपने साथ लाई है कि सबके बीच में मेरी फजीहत करेगी?" जयन्ती ने मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा, बस कर, रहने दे, लज्जा निभ गई, सिन्दूर-प्रसाद लेकर पहले पाँच बार माँग भर ले, तब पीछे कनकना।"

एक स्त्री ने तारा से कहा—"तुम्हारे ललाट की बिन्दी आज खूब खुलकर नहीं खिली क्यों? जयन्ती के ललाट पर

बिन्दी जैसी खुलती है, वैसी तुम्हारे भाल की बिन्दी लगी हुई नहीं देख पड़ती।" इतने में फिर छींक हुई! जयन्ती कहने लगी—"किसकी नाक में 'पीनस-रोग' हो गया है, जो—जब कभी सखी के सिन्दूर की चर्चा चलती है तब—झट छींक देता है? निगोड़ा नाक मलकर क्यों नहीं रह जाता?"

तारा ने चौंककर कहा—"सखी! जरा कान देकर सुनें, मेले में बड़ा हल्ला मचा हुआ है!" दोनों, कान लगाकर, गुल-गपाड़ा सुनने लगीं। मालूम हुआ कि कुहराम मच रहा है। दोनों सखियाँ घूम-घूमकर पूछने लगीं कि कहाँ और किधर शोर-गुल मचा हुआ है। किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। असलियत का पता किसी को मालूम न था। सब-के-सब बीसों तरह की कानों-सुनी बातें कहते थे। परन्तु घटना-स्थल की ओर से आते हुए एक प्रत्यक्षदर्शी ने कहा—"सेवा-समिति के एक स्वयं-सेवक को हैजा हो गया था! वह देखते-देखते चल बसा!"

यह शोक-संवाद बिजली की तरह मेले में फैल गया! हर जगह इसी की चर्चा होने लगी। सेवासमिति की सुव्यवस्था और सुविधा-सम्पन्न सेवा-विधि को सब लोग जहाँ-तहाँ सराहते थे और स्वर्गीय स्वयंसेवक की सद्गति के लिये समवेदना-प्रकाश-पूर्वक ईश्वर से प्रार्थना करते थे। तारा और जयन्ती करुणा-पूर्ण कौतूहल से कातर हो गई थीं। अपने उस सहायक की मृत्यु का सन्देह कर, दोनों सखियाँ, आगे-पीछे, सेवा-समिति-कैम्प की ओर चलीं। वहाँ जाते ही कतिपय पर-दुःख-कातरा स्त्रियों के मुख से निकले हुए ये अमंगल शब्द तारा के कानों में पड़े—"हाय!

हाय !! हाय !!! अभी बेचारे का गौना भी नहीं हुआ था ! अभी तो काशी मे पढ़ता ही था...!" यहाँ तक सुनते ही तारा के हृदय पर एकाएक वज्रातंक छा गया ! भूकम्प-भीषण हृत्कम्प से अचेत होकर वह प्रचंड-पवनोन्मूलित लता की तरह पृथ्वी-तल पर गिर पड़ी ! चारो ओर शोर मच गया ! जबतक जयन्ती उस घटनास्थल पर मूर्च्छित होने के लिये पहुँची, तबतक तारा अपने स्वर्गीय स्वामी की संगिनी बनकर सतीलोक को सिधार गई !

हा ! हन्त !! कौन जानता था कि श्मशान-घाट की सैकत-शय्या ही 'तारा' और 'लोचन' की पुष्पशय्या होगी ? किसको मालूम था कि गंगा का पवित्र पुलिन ही 'तारा' और 'लोचन' का मिलन-मंदिर होगा ? कब ऐसी आशा थी कि जिनके प्राण विरहानल-ज्वाला में जल रहे थे, उनकी स्थूल काया एक ही चिता की अग्नि मे भस्मीभूत होगी ?

'हमने अफ़लाक को सौ रंग बदलते देखा !
पर ये क़िस्मत के नविश्ते को न टलते देखा !"

प्रायश्चित

Beauty, blemished once, for ever's lost.

—*Shakes.*

अनुकूल आद्या-शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्त्ति है,
सद्धर्म्म की जो मूर्त्ति और पवित्रता की पूर्त्ति है।
नर-जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्वती,
हा दैव ! नारी-जाति की कैसी यहाँ है दुर्गती !

—'भारत-भारती'

† † † †

She's adorned
Amply that in her Husband's eye looks
Lovely—
The Truest Mirror that an Honest wife
can see her Beauty in.

John Tobin.

* * *

It is not a lip or eye we Beauty call
But the joint force and full result of all.

—*Pope.*

प्रयाग में यमुना-पुल के पास बम्बई के सेठ तेजपाल-गोकुलदास की एक विशाल धर्मशाला है। उसके सामने फूलपुर की रानी का जगन्नाथ-मन्दिर है। उस जगदीश-मन्दिर के फाटक पर प्रतिदिन तीनों काल शहनाई बजती है। धर्मशाला में उतरनेवाले यात्रियों को शहनाई की सुरीली आवाज बड़ी मीठी और सुहावनी लगती है। उसी धर्मशाला के ऊपरवाले सुसज्जित कमरे में हम अपनी पत्नी के साथ बातें कर रहे थे।

आसमान में मेघ कुश्ती लड़ रहे थे। कभी-कभी भुजदंड ठोंककर गरजते थे। रह-रहकर आकाश से जोर-शोर के साथ पानी की बौछार छूटती थी। वर्षा का जोर सिर्फ थोड़ी देर के लिये टिकता था। वर्षा जब बन्द हो जाती थी, तब पृथ्वी से सोंधी सुगन्ध उठकर वायुमंडल को सुवास से भर देती थी।

धर्मशाला के आँगन में मौलिश्री का एक वृक्ष है। उसके हरे-भरे पल्लवों के अंचल मे छोटे-छोटे फूल जुगनू-से जगमगा रहे थे। वे जब उद्धत वायु की चपत खाकर चू जाते थे, तब पल्लव भी उनके लिये आँसुओं की बूँदें टपका देते थे। हमें झट वह दिन याद पड़ जाता था, जिस दिन हम अपनी पहली पत्नी के साथ उसी धर्मशाला की खुली छत पर शरच्चन्द्रिका की मुस्कान-माधुरी चख चुके थे। उस समय मौलिश्री के फूल चू-चूकर आँगन को पुष्पमय बना रहे थे। उनकी भीनी-भीनी महँक हवा को नशीली बना रही थी। हमारी पत्नी हमारे मुखड़े

के पास अपना सुकोमल हाथ ले जाकर बड़े अनुराग के साथ कह उठती थी—

"फूल-सी जात है होहुँ तिते,
कर तोरत फूल न मेरे अघात हैं।
फूलेई फूल हौं लावति हौं,
मुख रावरो देखि कली भयो जात हैं ॥"

हमारा स्मृति-पट फिर भी आज उसी अभिनव रस-रंग से रञ्जित हो उठा ! हमारे हृदय के नेत्रों के सामने वही धुँधला चित्र था और इन चर्मचक्षुओं के सामने अनन्त शून्यता थी। अनायास मुस्कान की एक पतली रेखा हमारे मुखड़े पर खिंच गई। बीते हुए दिनों का धुँधला चित्र देखकर आँखों ने दो-चार करुणाविन्दु टपका दिये !

पत्नी—यह क्या ? इस समय आप किसी स्वप्न-लोक में विचरण कर रहे हैं ? भला हँसी तो हँसी सही, यह रुलाई—बेवक्त की शहनाई—कैसी ?

हम—क्यों ? बिजली के साथ क्या वृष्टि नहीं होती ? मुस्कान जिसे मोती-माला पहनाती है, उसके लिये आँखें बेचारी स्फटिक-माला भी न गूँथें ? कली के चिटकने पर ओस की बूँदें उसका मुँह नहीं धोतीं ?

पत्नी—बातें बनाना छोड़िये, मैं ताड़ गई !

हम—क्या ताड़ गईं ?

पत्नी—जिसकी स्वर्ण-खचित प्रतिमा मेरे हृदयतल पर झूल रही है, उसी की मीठी-मीठी स्मृति ! और क्या ?

हम—सचमुच, यद्यपि वह तुम-सी सर्वाङ्गसुन्दरी न थी, तथापि उसका हृदय जितना सुन्दर था, उसके पासँग मे भी तुम्हारी यह सुन्दरता नहीं है। उसका हृदय तुम्हारे कुसुम-सुकुमार अंग से भी कोमल, तुम्हारी विलास-लीला से भी मधुर, तुम्हारी श्वास-वायु से भी सुगंधित और तुम्हारी दाड़िम-दन्तावली से भी उज्ज्वल था।

पत्नी—मैं मानती हूँ, सब कुछ था। किन्तु उसका आदर करनेवाला, उसका प्रकृत मूल्य जाननेवाला नहीं था! सुनती हूँ, जैसी उनकी शक्ल-सूरत भोली-भाली थी, प्रकृति भी वैसी ही सरल थी; परन्तु इतने पर भी आपको प्रेम और शान्ति का खजाना पाकर संतोष प्राप्त नहीं हुआ था! सच है, वसन्त से भी सुन्दर वस्तु पाकर जिसकी तृष्णा तृप्त नहीं होती, उसे भगवान् श्मशान से भी भयंकर वस्तु प्रदान करते हैं।

हम—क्या तुम्हारा हृदय श्मशान से भी भयंकर है? क्या हम अपनी स्वर्गीया हृदय-देवी का आदर नहीं करते थे? क्या हम उसके अद्भुत गुणों का मूल्य नहीं जानते थे? किस कारण तुम कहती हो कि उसने हमें यथेच्छ रीति से सन्तुष्ट नहीं किया था?

पत्नी—मेरा हृदय इसलिये श्मशान-भयंकर है कि मैं पुरुष-समाज की निन्दा करती हूँ, उससे घोर घृणा करती हूँ। आप मेरे सौभाग्य-सर्वस्व हैं, पर मैं आपको भी हृदय-हीन ही कहती हूँ। इसी से मेरा हृदय मनियारा साँप से भी भयंकर हो गया है! यदि उस अपनी स्वर्गीया हृदय-देवी के लिये आपके हृदय मे थोड़ा भी वास्तविक आदर का भाव होता, तो आप उसके अनमोल गुणों का मूल्य अवश्य ही समझते। यदि उसके उदार

एवं मधुर भावों से आपकी सारी वासनाएँ और कामनाएँ तृप्त हो गई होतीं, तो आप एक ही सौदा कई हाथों में अदल-बदलकर बेचने का दुस्साहस न करते।

हम—हाँ, यथार्थ है। किन्तु रमणी-लोक में सौन्दर्य्य और माधुर्य्य, कोमलता और करुणा, सहृदयता और सदयता, प्रेम और शान्ति, आनन्द और पवित्रता का उमड़ा हुआ समुद्र लहरा रहा है। उसमें जब-जब गोते लगाये जायँ, एक-से-एक अनूठे रत्न मिलते हैं। उस रत्न-लाभ का लोभ-संवरण करना पुरुषों की बुद्धि की पराकाष्ठा से परे है।

पत्नी—रहने दीजिये इन थोथी दलीलों को। उन चमकीले रत्नों की ज्योति-लहरी पुरुषों की हृदय-हीनता का कलंक-प्रक्षालन नहीं कर सकती। (टन् टन् टन्) यह लीजिये, घड़ी भी मेरे 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर मेरा पक्ष-समर्थन कर रही है!

२

तीन बज गये। थोड़ी रात रहते ही उठकर हम शौचादि क्रिया से निवृत्त हो गये। नित्य-कृत्य से निबटकर, भोर की गाड़ी से घर जाने के लिये, हम स्टेशन् चले गये। गाड़ी में बेढब भीड़ थी। पत्नी को जनाना-कम्पार्टमेंट में, बुढ़िया दासी के साथ, बैठा दिया। बगल में ही मर्दाना-खाना था, उसी में हम बैठ गये। हमारे पास ही बैठकर एक बंगाली महाशय बड़े मधुर स्वर से गा रहे थे। उनकी सुरीली तान सबका ध्यान अपनी ही ओर आकर्षित कर रही थी। अपनी ओर सबको सुरुचिपूर्ण दृष्टिपात करते हुए देखकर, विशेष उमंग के साथ, कोमल कंठ से, वे गा उठे—

बाजिल बाँसेर बाँशरी।
बुझि बने बंशि बाजाइछे बन-बिहारी॥
वृषभानु-बाला बलि बोले बाँशी बाजीछे।
बाँका बनमाली बिने बाज बुके बिंधिछे॥
व्रजबाला बिरहेते व्याकुल बनबारि।
बलियाछि बारे बारे बंकिम बदने॥
वृथा बाँशी बाजायो ना बिजन बिपिने।
वृन्दावनबासी बाँशिर बैरी।
बसन्त बाताशे बान बिंधेछे॥
बँधुर बाँशीते बिष बर्षिछे।
बाजीछे बाहार बसन्त टोरि॥

बंगाली महाशय का गान सुनकर एक पंजाबी संन्यासी, जो अबतक चुपचाप बैठे हुए थे, अपनी गाने की उत्सुकता नहीं रोक सके। सबको चकित करते हुए, आप-से-आप, वे बड़े जोशीले स्वर से गा उठे—

किसी दुनिया के बन्दे को अगर शौक़े हुकूमत हो।
तो मेरा शौक़ दुनिया में फ़क़त इनसाँ की ख़िदमत हो॥
धरम अपना कोई ज़ालिम अगर ज़ोरो जफ़ा समझे।
मुहब्बत हो धरम मेरा, मेरा ईमान उल्फ़त हो॥
रुपये को ख़ूबिये क़िस्मत से गर कोई ख़ुदा समझे।
उसे मैं ठीकरी समझूँ मुझे ऐसी क़नायत हो॥
करें रौशन कहीं महलों में गर बिजली की क़न्दीलें।
तो मेरी कुटिया में मिट्टी का दिया जलने से राहत हो॥

पंजाबी संन्यासी-बाबा का गान सुनकर सब लोग मुक्त कंठ से धन्य-धन्य कह उठे। इन्हीं रसों के मिश्रण का सुख

एकत्र ही अनुभव करते-करते हमारी आँखों में झपकियाँ आने लगीं। हमारी अर्द्ध-निद्रित आँखों में, गाड़ी के साथ-साथ दौड़ती हुई सस्य-श्यामला भूमि की शोभा-लहरी, लहरा रही थी। ऊपर आकाश की निर्मल नीलिमा, और नीचे हमारे दृष्टि-पथ पर बड़े वेग से दौड़ती हुई द्रुमावली की हरियाली छटा, बड़ी भली मालूम होती थी। हम तो प्राकृतिक सौन्दर्य्य पर आँखें सेंकते-सेंकते सो गये। बड़ी देर के बाद, हमारी गाढ़ी नींद टूटी। हमने देखा कि आधी रात का समय है और गाड़ी एक स्टेशन पर खड़ी है। हमें मालूम हुआ कि हम एक हाहाकारमय संसार को पार करके एक शान्तिमय लोक में चले आये। सभी मुसाफिर निद्रा-देवी की अंक-शय्या पर पौढ़े हुए थे। जब गाड़ी खुली, तब हमने देखा कि चारों ओर अन्धकार का अटल साम्राज्य स्थापित है। अंजनी-नंदिनी गाड़ी अन्धकार-संसार में आलोक की सवेग धारा-सी प्रतीत होती थी; मानों स्याही के समुद्र में सोने का जहाज सगर्व चला जा रहा हो! हमें अपनी पत्नी की सुध भूल-सी गई थी। जब हमें वह याद पड़ी, तब हमारे देवता कूच कर गये! न जाने क्यों हमारी छाती में बेतरह धड़कन पैदा हुई; मानों व्याकुल प्राण वज्र-कपाट तोड़कर निकल भागना चाहते हों। हम किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये।

३

एक स्टेशन पर फिर ज्यों ही गाड़ी खड़ी हुई, त्यों ही हमने जनाना-डब्बे के सामने जाकर जोर से पुकारा—"गुलबिया! सो गई क्या रे?" कोई आवाज नहीं आई! हमारा तो होश-

हवास ही गुम हो गया ! सभी खिड़कियाँ बंद थीं ! हमने दुबारा ज्यों ही पुकारा, त्यों ही एक चिर-परिचित कोमल कंठ से निकली हुई मीठी आवाज सुन पड़ी—"हाय ! प्राणनाथ ! प्राण गये, प्यारे !" हमने ताबड़तोड़ दरवाजा खोलने की चेष्टा की; पर उसमें तो ताला बद था ! हम उन्मत्त हो गये । हम खिड़कियों में ठोंकरें मारते-मारते थक गये । तबतक बड़े झटके से एक खिड़की का दरवाजा उठाकर एक गोरे ने दपटकर कहा—"हट जाव यहाँ से बदमाश ।" हम डर गये !!! किन्तु झाँककर देखा, तो हमारी पत्नी वहीं बैठी-बैठी आँसुओं से मुँह धो रही थी । हमें देखते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी । जब उसने सामनेवाली खिड़की का दरवाजा उठाया, तब तो हमारी इच्छा हुई कि खिड़की पार कर डब्बे के अन्दर घुस जायँ । किन्तु वह कर-बद्ध हो अश्रु-रुद्ध कंठ से बोली—"प्राणेश्वर ! आप भीतर न आइये । यहाँ तो केवल व्यभिचारी, अत्याचारी, अन्यायी और स्वत्वाहंकारी दुःशासनों को ही आने का अधिकार है !" भीतर जाते ही उसने हमारे पैरों को पकड़कर कहा—"आप इन वंदनीय चरणों को ऐसे अपवित्र स्थान में मत रखिये । इनके लिये, मेरा पवित्र हृदय ही उपयुक्त स्थान था । किन्तु शोक ! अब वह रहा हो नहीं !" हमने घबराकर पूछा—"गुलबिया कहाँ ?" उसने गहरी आह भरकर कहा—"वह तो किसी एक पिछले स्टेशन पर आपको समूची गाड़ी में पुकार-कर ढूँढ़ आई, आप मिले ही नहीं ! वह भी, इस डब्बे को न पहचान सकने के कारण, कहीं इधर-उधर भटकती ही रह गई ! न जाने वह कहाँ छूट गई ! इस खाने की सब औरतें, बीच-

बीच में, उतरती चली गई हैं। मैं अकेली इस निगोड़े के पंजे में फँस गई! मैं चिल्ला उठती थी; पर यह राक्षस बलात्कार-पूर्वक मेरा मुँह बन्द कर देता था! बिलखकर मैं रह जाती थी। हा दैव! मैं पाप के गाढ़े पंक में धँस गई!"

उस गोरे ने हमारी पत्नी को आँखें तरेरकर डाँट दिया—"चोप रहो!" किन्तु वह पगली-सी होकर एक बार फिर हमसे बोली—"मैं अब आपसे सम्भाषण करने योग्य नहीं हूँ। इस अपावन शरीर पर अब आप अपनी पवित्र दृष्टि न डालिये। अब यह मदान्ध-मर्दिता लता आपके हृदयोद्यान की शोभा-वृद्धि करने के योग्य नहीं रही! यह दलित कुसुम अब आपके पूज्य चरणों पर चढ़ाये जाने योग्य नहीं है! इस प्रवंचनापूर्ण संसार के रचयिता के प्रति मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ, जिसकी दया से अन्तिम समय में आपके दर्शन प्राप्त हो गये! मैं कृतकृत्य हो गई।"

इतना कहते-कहते वह अनाथा की तरह रो पड़ी!

इतने में उस गोरे ने हमें पिस्तौल का निशाना बनाकर भयभीत करना चाहा! हमारे-जैसे अभागे निःशस्त्र भारतीय पर तमंचा तानकर आतङ्क स्थापित करना उस अत्याचारी गोरे के लिए बाँयें हाथ का खेल था। एक निहत्थे हिन्दुस्तानी को निपट भयातुर देखकर वह मदान्ध मुस्कराने लगा और फिर मदनावेश-पूर्ण दृष्टि से हमारी पत्नी की ओर देखकर, एक आलिङ्गनाभिलाषी विलासी की तरह, उसने अपनी भुजाओं को पसारा! हमारी पत्नी ने क्रोध-परवश होकर उस कामान्ध के शिथिल हाथ से झपाटे के साथ पिस्तौल छीन लिया और झटपट

उसे अपनी ही छाती से भिड़ाकर दबा दिया ! पिस्तौल की गोली निर्दयता के ज्वालामय लोक से निकलकर कोमलता के प्रेमामृत-सिक्त क्षेत्र को पार कर गई !! वह नर-पिशाच, पीछेवाला दरवाजा खोलकर, बड़ी तेजी से उतर भागा। हमारी दर्द-भरी आह, स्टेशन के शोर-गुल और खुलती हुई गाड़ी के 'फक्-फक्' धूम्र-श्वासोछ्वास के साथ शून्य में गायब हो गई। हम कटे हुए सूखे रूख की तरह मूर्च्छित होकर गिर पड़े ! हमारे चेतना-शून्य कानों में यम-यातना से उद्विग्न प्यारी की केवल इतनी ही स्फुट वाणी सुन पड़ी—

"इ...स...अ...प...रा...धि...नी...को...ऐ...से...ही प्रा...य...श्चि...त्त...की...अ...भि...ला...षा...थी !"

❀ ❀ ❀

लखते ही अँधेरा-सा आगे हुआ,
घटना की घटा वह घोर घिरी।
नयनों से अचानक बूँद गिरे,
चेहरे पर शोक की स्याही फिरी !
—'कमलाकर'

हठ-भगतजी

"सस्यानि स्वयमत्ति चेद्वसुमती माता सुतं हन्ति चेद्-
वेलामम्बुनिधिर्विलङ्घयति चेद्भूमिं दहेत्पावकः।
आकाशं जनमस्तके पतति चेदन्नं विषं चेद्भवे-
दन्यायं कुरुते यदि क्षितिपतिः कस्तं निरोद्धुं क्षमः॥"

❁ ❁ ❁ ❁

"वासांसि व्रजचारिवारिजदृशां हृत्वा हठादुच्चकैः
यः प्रागभूरुहमारुरोह स पुनर्वस्त्राणि विस्तारयन्।
व्रीडाभारमपाचकार सहसा पाञ्चालजायाः स्वयं
को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी॥"

१

मनोहरपुर के लाला सजीवनदास ऐसे-वैसे हठ-भगत नहीं हैं। आप अपनी हठ-भक्ति के लिये जिले-भर में प्रसिद्ध हैं। जिस स्थान पर अड़ जाते हैं, चाहे जो हो, उसके लिये बिगड़ जाते हैं; पर एक इंच भी नहीं डिगते। जिस काम के पीछे नोन-सत्तू बाँधकर पड़ जाते हैं, नौ पड़े या छः, उसके लिये आखिरी दम तक लड़ जाते हैं। बिना पूरा किये किसी काम का पिंड नहीं छोड़ते। एक बार मनसूबा बाँधकर जिस लकीर पर पैर जमा देते हैं, चाहे आँधी आवे या वज्र गिरे, बालभर भी पीछे हटने का नाम नहीं लेते। इसीलिये आप 'हठ-भगतजी' के नाम से विशेष विख्यात हैं।

जिस समय भारतवर्ष के सिर पर मुगल-सम्राटों की सघन छत्रच्छाया थी, उस समय लालाजी के पूर्वजों की किस्मत का सितारा बुलन्द था। आपके पूर्वज बड़ी-बड़ी जागीरें छोड़ गये हैं। बहुमूल्य बपौती अभी सुई की नोक-भर भी इधर-उधर नहीं हुई है, ज्यों-की-त्यों बरकरार है। उसी के सबब से आप अपने शहर के इने-गिने रईसों में शुमार किये जाते हैं! आप कट्टर ईश्वर-भक्त और पक्के सनातन-धर्मी हैं। आपके रोम-रोम में 'राम' रम रहे हैं और धमनी-धमनी में धर्म की रुधिर-धारा प्रवाहित हो रही है। आपकी आत्मा में प्रभु-भक्ति और चिन्ता में ईश्वरासक्ति भरी रहती है। आपकी कल्पना-वीथी में भगवान की लीलाओं की भीड़ लगी रहती है। आपके भावना-

में सारा कुटुम्ब डूब जाय, कोई गम नहीं। शोक की प्रचंड ज्वाला में धन-जन स्वाहा हो जाय, कोई डर नहीं। सारे घर में विकराल काल का तांडव-नृत्य होता रहे, बला से, कुछ परवा नहीं। यदि सारा संसार हमसे अलग हो जाय, तो इससे क्या? हो जाय। पुत्र-कलत्र की आहुति से सर्वनाश-यज्ञ का कुंड धधकता रहे, धधकने दीजिये। किन्तु हम विघ्न-भय से आरब्ध कार्य्य को बीच ही में अधूरा नहीं छोड़ सकते।"

डिगै न सम्भु सरासन कैसे।
कामी वचन सती मन जैसे॥

† † † †

३

मन्दिर-निर्माण का काम जारी था। इसी बीच में लालाजी के कनिष्ठ पुत्र का भी देहावसान हो गया! बहुत-से लोग सम-वेदना-प्रकाश करने के लिये आपके पास आये। सबने यही कहा कि 'अच्छे काम से भी यदि अमङ्गल होता जाय, तो उसे त्यक्त कर देना ही बुद्धिमत्ता है।' किन्तु आप सबकी बातें एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते थे। पुत्र-वियोग की विषम व्यथा बरदाश्त करते हुए कह दिया करते थे कि 'सूरदास की काली कमरी, चढ़े न दूजो रङ्ग'।

एक दिन सन्ध्या-समय शर्करा-मिश्रित तंडुल-चूर्ण लेकर आप चींटियों को राम-दाना बाँटने के लिये बाहर निकल पड़े। टहलते-टहलते बाबा हनुमन्तदास महन्त के मठ तक चले गये। हनुमन्तदास बड़े धनाढ्य मठाधीश हैं। उनके मठ का नाम

रामगढ़ी है। प्रतिदिन उनके मठ में सैकड़ों खाकी नागा धूनी रमाकर भर-भर मुट्ठी गाँजे की कलियाँ फूँका करते थे। गँजेड़ियों की गोष्ठी देख-देखकर आप जलते रहते हैं और कभी उन जटाधारी जञ्जाली जोगड़ों की जमात में जाना पसन्द नहीं करते। शहर के रईस बड़ी श्रद्धा से महन्तजी को मानते हैं; पर

कलियुगी 'साधू'-समाज को बड़ी सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हैं। उस दिन जब आप महन्तजी के पास पहुँचे, तब उन्होंने बड़ी सहानुभूति के साथ आपको समझाना शुरू किया। वे बोले—"भगतजी! आप तो नाहक हठ करके अपना सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं। आप गृहस्थ हैं, आपके लिये यह मार्ग दुर्गम है। यह पथ तो हम विरागियों के लिये ही सुगम है।"

महन्तजी की मूर्खतापूर्ण बातें सुनकर लालाजी मन-ही-मन मुस्कराने लगे। फिर नम्रतापूर्वक महन्तजी से बोले—

महाराज! आप लोग जिस परिवार को बेकार समझकर छोड़ बैठे, हम उसी को प्रभु-पद-पद्मों में प्रेमपूर्वक पुष्पवत् अर्पित कर रहे हैं। आप जिस मार्ग को गृहस्थों के लिये अगम्य बताते हैं, उसी मार्ग पर सत्यसन्ध हरिश्चन्द्र आदि गृहस्थ-सम्राट सफलतापूर्वक अग्रसर हो चुके हैं। विरक्त-शिरोरत्न नारद भी जिस कसौटी पर खोटे साबित हो चुके हैं, उसपर कसे जाकर हम कभी खरे नहीं निकलेंगे; ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु हमारी धारणा है कि जिसने दिया था, वही छीन रहा है और वही फिर देगा भी। इस चलाचल लोक में अचल मनवाले ही विजयी होते हैं। भगवद्भक्ति के सुमनमय मार्ग में कुटुम्ब-कंटक बड़े बाधक हैं। यदि हमारे भक्ति-पथ के कंटकों को स्वयं भगवान् ही चुनकर

पथ परिष्कृत कर दें, तो निस्सन्देह हमारा मनोरथ, सिद्धि की सुगम सड़क पर, अग्रगामी होता चला जायगा। महात्माओं का कहा हुआ है कि—

धर्म करत जो होवै हानि।
तबहुँ न तजै धर्म की बानि॥

फिर गुसाईंजी ने भी कहा है—

सुत-बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सब ही ते।
अन्तहुँ तोहि तजहिंगे पामर तू न तजसि अब ही ते॥

* * *

सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनख अपमान।
'तुलसी' धर्म न परिहरिय कहि करि गये सुजान॥

* * *

सिबि दधीचि हरिचन्द नरेसू।
सहे धर्म हित कोटि कलेसू।
गई बहोरि गरीब-नेवाजू।
सरल सबल साहब रघुराजू॥

क्या महात्माओं के ये वाक्य केवल आपलोगों के लिये ही कहे गये हैं? क्या हम गृहस्थों के लिये इनमें कुछ भी तथ्य या तत्त्व नहीं है? क्या हमलोगों से बढ़कर आप ही लोग इनसे उपदेश सीख सकते हैं? क्या भगवद्भजन केवल विरागियों के लिये ही शास्त्र-सम्मत है? क्या गृहस्थाश्रम में रहकर हम भगवद्भक्ति के बीहड़ रास्ते पर नहीं चल सकते? क्या हम गृहस्थ भक्तों के लिये ही गुसाईंजी ने यह नहीं कहा है कि—

कर ते कर्म करै बिधि नाना,
मन राखै जहँ कृपानिधाना ॥

४

लालाजी की बातें सुनकर महन्तजी चुप रह गये। आपकी अविरल भक्ति ने उन्हें मुग्ध एवं चकित कर दिया। इतने ही में आपका नौकर दौड़ा हुआ आया और बोला—"साँप के काटने से बड़ी बहू मूर्च्छित पड़ी हुई है!" नौकर की बात सुनकर आप फिर मुस्कुराये और घर की ओर चल पड़े। सहसा सत्संग-सुख भंग होने से आपको जितना कष्ट हुआ, उतना पुत्रवधू के सर्प-दंश का वृत्तान्त सुनकर नहीं। रास्ते में आप सोचते आ रहे थे कि 'जैसे मुर्दे पर एक मन मिट्टी वैसे पचास मन!' आपके घर पहुँचते-पहुँचते पुत्रवधू पञ्चत्व को प्राप्त हो गई! इस दुर्घटना से ठुकराकर आपका हठ-रूपी बम-गोला फूट गया! उसके प्रकांड प्रस्फोट से ऐसी प्रचंड ज्वाला प्रकट हुई कि वह सर्वस्व की पूर्णाहुति पाकर ही शान्त हुई। विपत्ति-विभावरी की विभीषिका आपको विचलित न कर सकी। अपनी मोह-मूर्च्छिता पत्नी को देखकर, 'निपट निरंकुस निठुर निसंकू' की तरह, आपने कहा—क्या तुम नहीं जानती हो कि 'जा फरा सो झरा औ बरा सो बुताना ?'

"कबिरा या संसार में, फूले सो कुम्हिलाय।
जो चुनिये सो ढहि परै, जामै सो मरि जाय॥"

❀ ❀ ❀

"केते भये जादव सगरसुत केते भये
जातहू न जाने ज्यों तरैया परभात की।

बलि बेनु अम्बरीख मानधाता प्रह्लाद
कहाँ लौं कहिये कथा रावन जजात की।
वे हू न बचन पाये काल कौतुकी के हाथ
भाँति-भाँति सेना रची घने दुख घात की।
चार-चार दिना को चवाव सब कोउ करौ
अन्त लुटि जैहैं जैसे पूतरी बरात की।"

पत्नी—"प्राणनाथ! पुत्र-शोक से बढ़कर संसार में दूसरा कोई शोक नहीं है। पुत्र-शोक की मर्म-वेदना मातृ-हृदय के लिये कितना असह्य है, यह मैं कह भी नहीं सकती और आप समझ भी नहीं सकते; कोई मातृ-हृदय ही इसका अनुभव कर सकता है। वह किसी प्रकार भाषाबद्ध होने योग्य नहीं है; वह कवि की कल्पना का विषय नहीं है; वह पुरुष-हृदय द्वारा अनुभूत होने योग्य भी नहीं है। आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप अब हर्गिज हठ न छोड़ें। अब सारी सम्पत्ति अपने 'सँवलियाजी' की सेवा में सहर्ष समर्पित कर दें! जब कोई भोगनेवाला ही न रहा, तब भोग्य पदार्थ रहकर ही क्या करेगा? जब बुलबुल उड़ गई, तब सारा चमन जलकर खाक हो जाय, कुछ प्रयोजन नहीं! जब भ्रमरावली ही नहीं रही, तब वसन्त रहे या पतझड़, दोनों एक-से हैं!"

भगतजी—"अब तो कौड़ी चित पड़े या पट, ठना हुआ काम समाप्त होकर ही रहेगा। वे भगवद्भक्त भला कैसे थे, जिनकी कीर्त्ति-लतिका आज भी विश्व-विटपी पर आकाश-वल्लरी की तरह छाई हुई है? क्या उन्होंने पारिवारिक प्रेम-रूपी तुच्छ काँच के पीछे ईश्वर-प्रेम-रूपी अमूल्य मणि का त्याग कर दिया था? नहीं, यदि ऐसा करते, तो उनकी कीर्त्ति-गाथा

आचन्द्रतारक अमर नहीं होने पाती। भक्त तो यही कहा करते हैं कि—

"साँई का घर दूर है, जैसे लम्ब खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेमरस, नाहिं तो चकनाचूर।"

❀ ❀ ❀ ❀

पत्नी—"प्राणनाथ! मेरे संकटासन्न प्राण अब मरणापन्न हो रहे हैं। किन्तु मैं जानती हूँ कि मुझ अभागिनी को अभी यमराज स्पर्श भी न करेगा। मुर्झाये हुए फूल पर माली का हाथ भूलकर भी नहीं पड़ता। जान पड़ता है कि मेरे प्राणों की भयंकरता ने यमराज को भी त्रस्त कर दिया है। दुःखी प्राणी को मौत भी नहीं पूछती। अब आप इस भोग-रहित धन को भगवान् की सेवा में लग जाने दीजिये। किन्तु जब धन का नाश होने लगेगा, तब आप अपने हठ पर पश्चात्ताप करेंगे। जबतक धन की कमी नहीं है, तबतक मन्दिर बनवाइये या यज्ञ कीजिये। मेरे तो जीवन-धन पुत्र चले गये! मुझे जीना न चाहिये; पर आप ही मेरे प्राणाधार हैं। आप ही के चरणों का सहारा पाकर मैं अचल स्थाणु की तरह इस प्रलय की आँधी में भी टिकी हुई हूँ। अब मुझे आप आज्ञा दीजिये। मैं सौभाग्यवती के रूप में ही संसार से बिदा होना चाहती हूँ।"

लालाजी—"प्राणप्रिये! धैर्य्य धारण करो। इस समय असम्भव को भी सम्भव कर दिखाओ। उस चरण-शरण में पूरी-पूरी आस्था रक्खो, अमङ्गल भी मङ्गल हो जायगा, कुलिश भी तृण हो जायगा, मृग-मरीचिका भी मन्दाकिनी बन जायगी,

उत्तप्त मरुस्थल में भी आनन्द-सागर उद्वेलित हो उठेगा और अग्नि-ज्वाला भी पुष्प-माला बन जायगी। उस प्रणतपाल परमेश्वर में प्रतीति रक्खो। वह तुम्हारे 'इस ईश्वर' का भी ईश्वर है, वह धर्म पर मर-मिटनेवालों का एकमात्र सहायक है। उसी से दया की भिक्षा माँगो, उसी की आशा पर अपने क्लेशों को भूल जाओ। बस, तुम्हारे लिये विष भी अमृत हो जायगा, आँधी भी मन्द-मन्द मलय-मारुत बन जायगी, भादो की अमावस्या भी चैत्र की पूर्णिमा हो जायगी, ग्रीष्म का मध्याह्न भी हेमन्त का ऊषा-काल हो जायगा और पतझड़ में भी वसन्त की आभा देख पड़ेगी। जब हमें परिवार के नाश की चिन्ता नहीं है, तब धन-नाश की चिन्ता की तो कोई बिसात ही नहीं। जिस करुणाकर के करोड़ों कुबेर किङ्कर हैं, उसके अभय-वरद पाणिपल्लवों की छाया में धननाश का सन्ताप नहीं सता सकता।

"जासु भवन सुरतरु तर होई।
सह कि दरिद्र-जनित दुख सोई॥"

* * * *

"साँई सबको देत है, ठाढे रहे हजूर।
जैसे रोड़ा राज को, भरि-भरि देत मजूर॥"

* * * *

"चिन्ता न करु अचिन्त रहु देनहार समरत्थ।"

पत्नी—"स्वामिन्! मेरे प्राण शष्पाग्रस्थ शीत-बिन्दु-से हो रहे हैं। मैं आपसे तर्क-वितर्क करके आपको झंझट-झमेले में फँसाना नहीं चाहती। किन्तु मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि आप ऐसे भक्त-पीडक भगवान् को भक्त-पालक क्योंकर कहते हैं? यदि इसी प्रकार भगवान् अमृत में विष घोलेंगे

अपने उपासक को भी उलटे छुरे से मूँड़ते रहेंगे, तो कौन ऐसा धीर-धुरन्धर संसारी है जो उनमें प्रीति-प्रतीति बनाये रहेगा ? उधर मन्दिर में भगवान् का सिंहासनारोहण और इधर मेरे पुत्रों का चिताभिरोहण ! उधर उन्हें पीताम्बर पहनाया जाय और इधर मेरे बच्चे कफन ओढ़ें ! उनपर पुष्प-मालाएँ और इनपर चिताग्नि ज्वालाएँ ! उधर मन्दिर में उनकी आरती उतारी जाय और इधर मेरे आँगन में सौभाग्य-सिन्दूर तथा चूड़ियाँ उतारी जायँ ! हाय ! कौन निर्दय-हृदय यह सहन करेगा ? ऐसे निष्ठुर नारायण केवल आप ही के हैं या और किसी के ?"

लालाजी—"बस, हमारे सामने उस दयासागर को निष्ठुर मत कहो। 'जासु कृपा नहिं कृपा अघाती'—उसे निष्कृप क्यों कहती हो ? 'जा के डर डर कहँ डर होई'—उससे डरना सीखो। जब तुम स्वयं भगवान् को ही अन्यायी प्रमाणित कर रही हो, तब फिर किसके सामने 'न्याय करने की प्रार्थना' लेकर जाओगी ? तुम हमारे-जैसे तुच्छ मनुष्य की उपासना में तल्लीन रहनेवाली एक अबला हो, उस लीलामय की अनन्त लीला का तुम रहस्य नहीं समझ सकती। हमे एक पहुँचे हुए फकीर ने बतलाया था कि 'करम ऊ बहा न मी जोयद, करम ऊ बहाना मी जोयद'—'अर्थात् मालिक की मेहरबानी फकीरी नहीं चाहती, वह कोई एक बहाना ढूँढ़ती है।' हम तो उसी फकीर की लकीर के फकीर हो रहे हैं। हमारी भगवद्भक्ति-भागीरथी में तर्क की तरंगें नहीं उठ सकतीं। देखो—सूर, तुलसी, मीरा आदि सर्व-मान्य भक्त-कवियों ने क्या कहा है—

"जुवती सेवा तऊ न त्यागै
जो पति कोटि करै अपकर्म।"
"सब समर्थ कोसल-पुर-राजा।
जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा।"
"अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
'मीरा' राम-लगन लागी, होनी होय सो होई॥"

पत्नी—"प्राणेश! मैं आपसे तर्क करना चाहती भी नहीं। 'हमहि तुमहि सरबरि कस नाथा? कहहुँ तो कहाँ चरन कहँ माथा?' मैं तो हाथ जोड़कर यही पूछना चाहती हूँ कि भगवान् को प्रसन्न करने का क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है? क्या मन्दिर में मूर्त्ति-प्रतिष्ठा करने से ही भगवद्भक्ति पूरी होगी? क्या गोशाला बनवाने से आपके गोविन्द-गोपाल सन्तुष्ट न होंगे? क्या अनाथालय और विधवाश्रम स्थापित करने से अनाथ-नाथ भगवान् की सेवा नहीं हो सकती? क्या पुस्तकालय और औषधालय खोलने से भव-भेषज भगवान् सच्चिदानन्द तृप्त नहीं हो सकते? क्या प्राणि-मात्र की निष्काम सेवा से बढ़कर दूसरा भी कोई भक्तियज्ञ है? क्या पीड़ितों और निराश्रितों की सहायता करने से भगवान् प्रसन्न नहीं होते? क्या ईश्वराराधन का साधन लोकोपकार नहीं है? हाय! आपको कौन समझावे? आप किसी की सुनते भी तो नहीं! न जाने अभी क्या-क्या भाग्य में बदा है!"

लालाजी—"जो बदा था, वह बीत गया। तुम्हारे अङ्काकाश का पुत्र-पूर्णेन्दु काल-राहुग्रस्त हो गया, हमने इन्हीं प्रसन्न आँखों से देखा। उसकी अनुगामिनी—तुम्हारे घर-आँगन की

चाँदनी—को बादलों ने ढँक लिया, हमारे मुँह से उफ तक न निकला। तुम्हारे अङ्गणाकाश की अटा-घटा में छटा छिटकाने वाली बिजली को प्रलय-घन लील गया, हमारी धारणा धरणी की तरह अचल रही; तिल-भर भी हमें विषाद नहीं हुआ। सम्भव है, तुम्हारे आँगन की धूल में लोट-पोटकर मस्त रहने-वाले इस पयाहारी जटिल बम-भोला बाल-योगी को भी शीघ्र ही अपनी गोद में लेकर क्रूर काल निहाल हो जाय और पौत्र-वियोग से तुम्हारा जीवन-प्रदीप भी, स्नेहशून्य होने के कारण, निर्वाण को प्राप्त हो जाय। ईश्वर की इच्छा को कौन जानता है? न जाने अभी उसे क्या-क्या करना मंजूर है!"

इतना सुनते ही उसकी छाती में छेद हो गया! वह हाय-हाय कहकर धरती पर लोट गई! उसने अपने मातृ-पितृ-विहीन पौत्र को छाती से लगा लिया; रोना चाहती थी; पर रोया नहीं जाता था! रोते-रोते आँखें सूज गई थीं। छाती कूटते-कूटते हाथ थक गये थे। शिथिल हाथों के लिये बच्चे को सँभालना भी कठिन हो गया! मारे शोक के छाती छलनी हो गई थी, उसका दूध भी सूख गया था! बेचारा बच्चा रोता था; पर वह दो-चार बूँद दूध पिलाकर भी उसे शान्त न कर सकी! पुत्र-शोक-वश अनवरत उर-ताड़न से छाती पक गई थी, अतः रोने के समय उसका कलेजा घाव की तरह दुखने लगा—"जनु छुइ गयउ पाक बरतोरा"—वह अचेत हो गई। अनर्गल आँसुओं ने कपोल की ललाई पहले ही धो डाली थी; देखते-देखते अधरों की अरुणिमा भी कालिमा में परिणत हो गई!

मृगी की-सी बड़ी-बड़ी आँखें उलट गईं ! कुटिल काल का व्रत भी इसी पवित्र पारणा को पाकर पूरा हो गया !

४

लालाजी का मार्ग निष्कंटक और मन निर्द्वन्द्व हो गया ! एक पौत्र था, वह भी काल के गाल में चला गया ! वह स्तनंधय शिशु—वह दन्तावली-किरण-विहीन दूज का चाँद—वह स्नेह-परिपोषित वंश-प्रदीप—वह प्रणय-कुसुमाकर का प्रथम कुसुम—वह किसी अदृश्य हृदय-कनक-पंजर का प्यारा तोता—न जाने क्या हो गया ! उसका उदय और अस्त, उसका बलना और बुझना, उसका खिलना और कुम्हलाना, उसका बैठना और उड़ जाना, उसका—किसी बच्चे के खिलौने की तरह—झट बनकर बिगड़ जाना, जिसने देखा उसी ने खून के आँसू बहाये ! किन्तु लालाजी का कलेजा नहीं पसीजा ! आप तो सोच रहे थे कि—

"ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि भई ।
कहा होत अबके पछिताने होनी सिर बितई ।"

फिर भक्ति-गद्गद हृदय से कहते थे—

"भील कब करी थी भलाई जिय आप जानि
फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका ?
गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ
व्याध और बधिक निसाफ कहु किसका ?
नाग कब माला लै के बन्दगी करी थी बैठ
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका !

एते बदराहों की बदी करी थी माफ
जन 'मलूक' अजाती पर एती करी रिस का ?"

"दीनदयाल सुनी जब ते तब ते हिय में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ मैं तेरे हित की पट खैंच कसी है॥
तेरोई एक भरोस 'मलूक' को तेरे समान न दूजो जसी है।
एहो मुरारि पुकारि कहौं अब मेरी हँसी नहि तेरी हँसी है॥"

५

इस आख्यायिका के आधार-भूत भगतजी आज तक मनोहरपुर में मौजूद हैं। वह 'ठाकुरबाड़ी' भी बरक़रार है, जिसपर इस आख्यायिका का सारा दारमदार है। मन्दिर में प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा होने के बाद, लालाजी ने फिर दूसरा विवाह किया! वह पत्नी आज भी वर्त्तमान है। उससे पुनः दो पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए हैं। उनमें से एक की भार्य्या पुत्रवती है। जो आँगन एक दिन श्मशान हो गया था, वह आज नन्दनोद्यान हो रहा है। जिस घर मे एक दिन अविश्वास-राजा के साथ निराशा-रानी राज करती थी, उसी घर में सन्तोष-राजा के साथ शान्ति-रानी आज राज कर रही है। जहाँ एक दिन पुत्र-शोक-विह्वला पतिप्राणा प्रणयिनी का प्राण-प्रयाण हुआ था, वहाँ आज एक प्रियंवदा सुन्दरी—सन्तान-वत्सला जननी के रूप में—अजस्र अमृत-वर्षा कर रही है। जहाँ एक दिन दुःख के कोल्हू में पेरे गये हुए नेत्र-तिल के अश्रु-तैल से प्रज्वलित शोक-दीपक में मनोरथ-पतङ्ग जलकर भस्म हो चुके थे, वहीं आज हृदय-तिल के स्नेह से जाज्वल्य प्रेम-प्रदीप में परिताप-पतंग जल रहे हैं।

जहाँ किसी दिन तर्क-तरंगिणी लहराती थी, वहाँ आज भक्ति-भागीरथी उमड़ रही है। जहाँ कभी भय और चिन्ता का बोलबाला था, वहाँ अब अमन्द आनन्द और श्लाघ्य श्रद्धा की धाक जमी हुई है। जहाँ मानव हृदय कभी नरक की यम-यन्त्रणाओं से नियन्त्रित था, वहाँ अब उसके सुख-सौध के प्रत्येक सर्ग में स्वर्ग है! किन्तु हठ-भगतजी के हृदय-पट पर पूर्ववत् यही अंकित है—

"हठ न छूट छूटै बरु देहू!"

अनूठी अँगूठी

अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीम्
फुल्लारविन्दनयनां तनुलोमराजिम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वललालसाङ्गीम्
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥

❀ ❀ ❀ ❀

शेख़ ने मसजिद बना मिसमार बुतख़ाना किया।
तब तो इक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया ॥

❀ ❀ ❀ ❀

Flowers of the field ! how fair ye here ?
Love's fragrance in your bloom I find;
From earth emerging ye appear,
Say where is the charmer of my mind !

❀ ❀ ❀ ❀

When love attracts two hearts; it's plain—
Its influence will in both remain.

१

कार्त्तिक-पूर्णिमा थी। आकाश-देवता का 'चन्दन-चर्चित नीलकलेवर' अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता था; मानों साँवले-सलोने आकाश ने चाँदनी का चमकीला (जरीदार) चोगा पहन लिया हो। मयूर-चंद्रिका धारण किये हुए श्याम सुन्दर के समान आकाशदेव का इन्दीवर-श्याम रूप, कुन्द-कुसुमावली की-सी तारा-हारावली की शोभा से, विशेष नेत्ररञ्जक प्रतिभात होता था। ताराओं को देखकर ऐसा मालूम होता था कि दिक्कुञ्जरों ने स्वर्गङ्गा के तट पर जल-केलि करते समय अपने शुभ्र शुंड में दर्पणोज्ज्वल जल भरकर क्रीडा-वश जो स्वच्छ फव्वारे छोड़े हैं, ये तारे उन्हीं से निकलकर उड़े हुए स्फटिक-श्वेत कण हैं। विश्व-वट-वृक्ष के नील-निविड पल्लव-जाल में खद्योत-उद्योत की भाँति जगमगानेवाले नक्षत्रो की शोभा देखकर हमारे लावण्य लालायित लोचन लुब्ध हो रहे थे। पवित्र-पाथ-परिपूर्ण पुष्करिणी से पङ्कज-पराग चुराकर सरसिस्नाता समीर-सुन्दरी सघन रसाल-कुञ्ज की ओर दबे पाँवों भगी चली जाती थी।

हम अपने दो-चार हमजोली मित्रो के साथ अपने बँगले के बगलवाले चमन में चहलकदमी कर रहे थे। पास ही की सड़क से बहुत-से लोग गङ्गा-स्नान के लिये मेले की ओर खिंचे चले जाते थे। एक तो ज्योत्स्ना की तरंग, दूसरे मेले में शीघ्र पहुँचने की उमग और तीसरे रंग-विरंगे आदमियो का संग। सब लोग अपनी-अपनी मौज में मस्त, गप्पें लड़ाते, गाते-गवाते,

चले जाते थे। कहीं कोई 'बिरहा' गाता था और कहीं कोई 'बिहाग' अलापता था। स्त्रियों का झुरमुट सम्मिलित स्वर से गाता चला जाता था—" ए गङ्गा-मैया तोहि चुनरी चढ़इबो, सइयाँ से कर दे मिलनवाँ राम !" हमारे एक मित्र भी देखा-देखी तान छेड़ने लगे—

"तमाशे क्यों न देखें हम तमाशागाह दुनिया के।
जिसे आँखें खुदा ने दीं वह अन्धा हो नहीं सकता॥
बुरे को जो कहे अच्छा वही अच्छा है ऐ 'वासिफ' !
बुराई से किसी का कोई अच्छा हो नहीं सकता॥
हज़ारों ऐसे दरिया हैं समा जाते हैं क़तरों में।
यह एक क़तरा हमारा है जो दरिया हो नहीं सकता॥"

सड़क की ओर से 'वाह यार ! मस्त बने रहो' की आवाज आई। हमलोगों ने सोचा—बस, यही सबसे बढ़कर रसिया दल जा रहा है, चलें हमलोग भी इसी रँगीले झुंड में शामिल हो जायँ। हमलोग भी बिलकुल छरीदे थे—'फटकचन्द गिरधारी, जिनके लोटा न थारी'—झट जाकर उस 'मनोरञ्जन-मंडली' में सम्मिलित हो गये। हम अपने को बड़ा हँसोड़ समझते थे; पर उस मंडली में तो एक-से-एक बढ़े-चढ़े बावन-वीर निकले ! उनकी बात की करामात के सामने हमारी बिसात क्या थी, हमारी तो नानी मर गई ! हमारी हाजिर-जवाबी सटक सीताराम हुई ! हमारी कथक्कड़ी दुम दबाकर भाग चली ! अपनी दिल्लगीबाजी के जोम में हम पहले यह नहीं समझते थे कि ईश्वर की इस अतर्क्य सृष्टि में कैसे-कैसे मस्त जीव पड़े हैं।

उसमें मिलकर खो गया मैं, मेरी मति औ' मेरा बल।
जैसे गुम दरिया में हो, बरसात का एक बूँद जल॥

२

छैल-छबीले नौजवानों की बात तो अभी ताक पर रहे, उस मंडली का एक बूढ़ा-बाबा ही ऐसा था, जो एक नम्बर का बातूनी और परले सिरे का मसखरा था। वह ऐसी-ऐसी चोज-भरी बातें कहता था कि हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाता था। हमारे मित्रों ने जब बार-बार हमें भी कुछ बोलने के लिये उकसाया, तब बहुत सोच-विचारकर हमने शान्त भाव से कहा—"बूढ़े-बाबा! हमलोग भी मेले में ही चल रहे हैं, कुछ ज्ञान की बातें कहो, ताकि रास्ता कटे; बूढ़े होकर यह कहाँ का 'त्रिया-चरित्र का पोथा' पसारे हुए हो?"

हमारा इतना कहना था कि वह बूढ़ा बड़े गर्व से बोला—"अरे वाह रे बच्चू! अगर हम बूढ़े हैं तो फिर जवान कौन है? नहीं जानते हो कि हम कलियुगी बूढ़े हैं? सिर्फ देखने के लिये हम सौ वर्ष के बूढ़े हैं, मन में तो अभी सोलह साल के सैलानी छोकड़े की-सी उमंग भरी हुई है! तुम भी तो नौजवान हो, मगर मजाल क्या कि हमसे एक बार भी पंजा लड़ा लो। अच्छा, जाने दो, आओ, जरा हमारी बाँह तो टेढ़ी करो। अरे बच्चू! हमसे भिड़कर तुम पार नहीं पाओगे। हमने रुपये का पक्का पाँच सेर घी और गोरखपुरिया पैसे से टके सेर का दूध खाया-पिया है। तुम्हे तो आँख में आँजने को भी घी-दूध मयस्सर नहीं होता होगा। तुमसे तो हमारा बाल भी बाँका नहीं

हो सकता। देखने में तुम्हारा शरीर चिकना और मुलायम भले ही हो; पर उसमें कुछ है नहीं, ख़ाली ज़नानों की तरह नज़ाकत और नफ़ासत भरी हुई है। हमारा शरीर देखो, गूँधे मैदा की तरह मुलायम है; पर तुम्हारे शरीर की तरह खोखला नहीं है, खूब ठोस है। ज़रा आज़माइश करके देखो कि हमारा शारीरिक संगठन कितना दृढ़ है। हम उन्नीसवीं शताब्दी के नवयुवक हैं, तुम बीसवीं शताब्दी के नवयुवक हो। हमारा ज़माना सादगी और सस्ती का था, तुम्हारा ज़माना विलासिता और महँगी का है। हमारा भारत 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' था, तुम्हारा भारत 'दरिद्रता का अखाड़ा' है। हमारा भारत 'अन्नकूट-महोत्सव का केन्द्र' था, इसलिये हम अबतक हट्टे-कट्टे हैं; तुम्हारा भारत 'गजभुक्तकपित्थवत्' सार-शून्य है, इसलिये तुम्हारा 'मुँह चिकना और पेट खाली' है। हमारा यौवन-युग ब्रह्मचर्य्य-वसन्त से विकसित था, तुम्हारा यौवन-युग बाल-विवाह के पतझड़ से शुष्क है!"

इतना कहकर उस बूढ़े ने कछनी काछ ली और छरककर मंडली से अलग दूर हट गया। वहाँ जाते ही 'ताक-धिना-धिन' कह-कहकर मगन-मन हो नाच-नाच गाने लगा—

"अब हम जानी देह बुढ़ानी।
जर्जर देह फिरत निसि-बासर तन की खाल झुरानी॥
हाथ-पाँव सिर काँपन लागे नैन नाक बहै पानी।
मिट गई चमक दमक अँग-अंग की दसनन की भई हानी॥
स्रवन बधिर मुख बचन न आवत तबहुँ न मानत ग्लानी।

बिनु गारी नारी ना बूझै पुत्र करै कलकानी।
घर में आदर-भाव नहीं है खोखत रैन सिरानी।
अबहीं ते नर छाड़ि सकल भ्रम भजि लै सारंगपानी।
'रामदास' यह देह दसा की बल-बुधि सकल नसानी॥

बूढ़े का कूदना, नाचना, गाना और रिझाना देखकर हँसते-हँसते हमलोगों के पेट में बल पड़ गया। इसी प्रकार उमंग की भंग छानते हुए हमलोग मेले में पहुँचे। चारों ओर उमड़े हुए जन-समुद्र से ज्वार-भाटा की तरह कोलाहल उठकर आकाश-मंडल को हाहाकारमय बना रहा था। जैसे समुद्र में नदियाँ मिलती हैं, वैसे ही चारों ओर से असंख्य नर-नारियों की अटूट लड़ियाँ मेले में मिल रही थीं। हमलोग भी, जल-कण की भाँति, मेले में विलीन हो गये।

३

मुँह-अँधेरे ही झुंड-के-झुंड लोग गङ्गा-तट की ओर जाने लगे। अपनी मंडली के लोगो को स्नानार्थियों की भेड़-धसान में धँसते देखकर हमलोग भी पीछे हो लिये। समुद्र की तरंगों की तरह हमलोग भी आगे बढ़ते गये। गङ्गा के तीर पर पहुँचकर हमने देखा कि गङ्गा का रूप ही परिवर्त्तित हो गया है, भगवान् कपाली के गले की नर-मुंड-माला मानों गङ्गा के गले में आ पड़ी है। धन्य आर्य्य-जन-कीर्त्ति-कल्लोलिनि गंगे! जबतक संसार में हिन्दू-धर्म का अस्तित्व स्थिर रहेगा तब-तक तुम्हारे तट पर आबाल-वृद्ध नर-नारियो की भीड़ लगी ही

रहेगी, इसमें सन्देह नहीं। भूतेश्वर-भाल-भूषण भागीरथी की भैरवी मूर्त्ति भी देखकर हृदय में हर्ष हिलोरे लेने लगा। हमारे मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—"भागीरथी हम दोस भरे पै भरोस यही कि परोछ तिहारे।" तबतक आकंठ-जलमग्न बूढ़े-बाबा भी गोते लगाते-लगाते कह उठे—"गंगा-बिन्दु-बिन्दु में गोबिन्द दरसतु है।"

जिस प्रकार फोनोग्राफ के रेकर्ड पर सुई पड़ने से सरस संगीत-लहरी लहराने लगती है, उसी प्रकार भूमंडल-रूपी फोनोग्राफ़ के आकाश-रूपी रेकर्ड-प्लेट पर मन्दिर के चुभीले कञ्चन-कलश की सुई पड़ने से भक्ति-संगीत-सुधा की लीला-लहरी चारों ओर लहरा रही थी। कनक-किरीट-धारी प्राचीन शिवालय की सीढ़ियाँ पखारती हुई गंगा अविरत कल-कल के साथ बहती चली जा रही थी। जब से यह बहती है तब से न जाने कितनों के पाप धो-बहा ले गई। न जाने आजतक कितनों की अभिलाषाएँ इस गंगा की गोद में पली होंगी और कितनों की आशाएँ इसकी अविश्रान्त धारावली में बहकर अनन्त सागर के अतल गर्भ में डूब गई होंगी। इस महा-महिम मन्दाकिनी की माया उस मायापति मुकुन्द के सिवा दूसरा कौन जान सकता है?

अभी तक तो हम कल्पना कावेरी के कमनीय कल्लोलों में अवगाहन कर रहे थे; पर सबको स्नान करके मन्दिर की ओर लपके जाते देख उस अर्द्ध-गङ्गा से निकलकर हमने वैष्णवी गङ्गा में प्रवेश किया। कौवे की तरह ताबड़तोड़ स्नान करके मोटी धोती काँखासोती किये हुए, लोटे मे जल भरकर,

हम भी मन्दिर की ओर चले। देह से देह छिलती थी। सिर से सिर टकराता था। किन्तु धन्य हैं सेवासमिति के श्रद्धालु स्वयंसेवक! उस अपार धर्म-धक्के में उन्हीं के उद्योग से एक कुसुम-कोमलाङ्गी कुचलते-कुचलते बच गई! उसके सजल-सलज्ज लोचनों को देखकर, भक्ति की ज्योति से प्रकाशित हमारे हृदयाकाश में, करुणा की काली घटा घिर आई। उस हमारे हृदयाम्बर की श्रावण-श्यामला घटा के प्रभाव से नेत्र-निर्झर उमड़ चले। जिस जगह असंख्य भक्तों की आँखों ने भक्तिगद्‌गद्‌ अश्रु-धारा बहाई थी, उसी जगह हम न जाने करुणा की धारा क्यों बहाने लगे! जहाँ अगणित भक्तों के कर-कमलों से नित्य बजाया जानेवाला घंटा झूल रहा था, वहाँ हम अपनी हृत्तन्त्री क्यों बजाने गये? कुछ समझ में नहीं आया!

४

जिस उद्यान की वह कुसुमित लतिका थी, सचमुच वह नन्दनोद्यान से भी कहीं अधिक रमणीय होगा। वह मेघ निस्सन्देह स्वाति-विन्दु से गर्भित होगा, जिसकी वह अङ्कमालिका बिजली थी। जिस गगन-तल की वह चन्द्रलेखा थी, वह निश्चय ही देदीप्यमान हीरक-खंडों से खचित होगा। जिस सरस-सलिला सरसी की वह सरोजिनी थी, वह वस्तुतः किसी प्रेमान्ध भ्रमर की क्रीडास्थली होगी। धन्य होगा वह नन्दनोद्यान, जिसकी वह हरिचन्दन-कलिका थी। धन्य होगा वह माली, जिसने पुष्प-चय चुनकर वैसी मनोहारिणी माला बनाई थी।

उसकी रूप-माधुरी मुकुलित बकुल की छाया-सी शीतल थी। इसी लिये उसके दर्शन से हृदय में उत्ताप की जगह शान्ति उत्पन्न होती थी। उसके तीखे-तिरीछे तरल लोचन रस-कुंड के मीन थे, लज्जा के जाल में फँसकर वे बेताब हो गये थे। मालूम होता था कि अश्रु-जल से अलग होते ही वे प्राण से हाथ धो बैठेंगे।

हमने उस सहृदय स्वयंसेवक को कोटिशः धन्यवाद दिये, जिसने कुशल कारीगर करतार के बनाये हुए उस बे-जोड़ खिलौने को चकनाचूर हो जाने से बचा लिया था। एक स्वयं-सेवक-मंडल उसे भुज-मंडल में घेरकर, यथास्थान पहुँचाने के लिये बाहर ले चला। हम भी साथ ही चले। हम जब मन्दिर के मंडप से बाहर आये, तब एक बार फिर धुआँ-धार धक्का मिला। उस अन्धाधुन्ध धक्के में पड़कर हम सार्थ-भ्रष्ट हो गये। क्षण-भर पहले हमारे नेत्रों के सामने जो तरंगिणी लहराती थी, वह देखते-देखते हाहाकारमय समुद्र में विलीन हो गई। न जाने हमारे हृदय की कसौटी पर खिँची हुई कनक-रेखा किसने मिटा दी! उस रत्न के लिये हमने मेला-महोदधि मथ डाला; पर वह नहीं मिला!! उसके जोड़ का, हाय! उसके नमूने का भी, कोई रत्न नहीं मिला!!!

"बहुत ढूँढ़ा उसे हर्गिज़ न पाया।
अगर पाया, पता अपना न पाया॥"

हम एक पीपल के पेड़ के नीचे, मुहर्रमी सूरत बनाये, बैठे हुए थे। थके-माँदे तो थे ही, दिल की गाँठ में बँधी हुई मणि खो जाने से चित्त और भी उदास था—"फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई!"

हमें एक अप्रधान स्थान में हताश बैठे देखकर हर-एक राह-चलते आदमी को बड़ा कुतूहल होता था। क्रमशः हमारे चारों ओर नर-नारियों का जमघट लग गया। इतने ही में एक वृद्धा स्त्री ने, जो हमारे मुख की ओर आँखें गड़ाकर देख रही थी, छूटते ही कहा—"यह आदमी तो 'चमेली' का दुलहा जान पड़ता है!" उसकी इस बात की पुष्टि करती हुई एक दूसरी वृद्धा बोली—"हाँ, रूप-रङ्ग तो वैसा ही मालूम होता है। ब्याह में रेखें भी नहीं भींगी थीं, अब तो बड़ी-बड़ी मूँछें निकल आई हैं।" तबतक उन दोनों वृद्धाओं को अलग हटाती हुई एक तीसरी अधेड़ औरत हमारे पास आकर बोली—"चलो, जाओ, बूढ़ी हो जाने से तुमलोगों की आँखों की जोत मन्द हो गई है, मुझे देखने दो, मैंने ब्याह में उबटन लगाया था, मुझसे बढ़कर कौन पहचानेगा?" इतना कहकर वह बड़े गौर से हमारे चेहरे की ओर देखने लगी। देख लेने के बाद उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"मुख्तार साहब का दामाद ही तो है। ब्याह के बाद ही आसाम भाग गया था। पूरब-बंगाल देश का पानी लग गया है। लो, बहुत दिनों पर 'चमेली' का भाग जगा है।" यह सुनकर एक युवती ने मटककर मुस्कराते हुए कहा—"इनको

अपने साथ ले चलो, 'चमेली' चुनरी चढ़ाने आई ही है, 'सइयाँ से मिलनवाँ' हो ही गया, अब दुहरी चुनरी चढ़ावे!" ऐसा कहकर वह युवती अपने मुँह पर अंचल देकर हँसती हुई भीड़ से बाहर चली गई!

हमने झुँझलाकर कहा—"तुमलोग अब अपनी-अपनी राह देखो, हमारे पीछे क्यों पड़ी हो? हम बंगाल या आसाम कभी नहीं गये और न कभी घर से भागे; न हमारे ससुर मुख्तार हैं और न हमारी पत्नी का नाम ही 'चमेली' है। तुमलोग बेकार भ्रम में पड़ी हो। बे-सिर-पैर की बातें न करो। हमारा घर 'पुरुषोत्तमपुर' है। दया करके अब अधिक तङ्ग न करो।"

हम लाख कहते ही रह गये, पर उन हठीली स्त्रियों ने सब अनसुनी कर दी। हमपर वे मधुमक्खियों की तरह टूट पड़ीं। कोई वृद्धा हमारे पैरों पड़ने लगी और कोई हमारा चिबुक धर-कर गिड़गिड़ाने लगी। वे इस कदर गुड़-चींटा की तरह चिपकीं कि हमें अपने साथ ले जाकर ही शान्त हुईं। हमें उनका अनुरोध अङ्गीकार करना अभीष्ट नहीं था; पर हम करते नहीं तो जाते किधर?

हम अजब असमंजस में पड़ गये। हमने बहुत दूर तक सोचा; पर किसी एक निश्चित परिणाम पर पहुँच न सके। अश्रद्धालु के विपुल दान की तरह हमारे सारे विचार विफल हो गये। कभी ओठों पर एक अनीप्सित हँसी खेल जाती थी और कभी छाती के अन्दर कोई ठोकरें मारने लगता था। उन आग्रह-कारिणी अबलाओं के साथ जब हम मूँगालाल पंडे के दोमंजिले मकान की छत पर पहुँचे, तब हमने एक ऐसी जगह में जाकर

बैठना पड़ा, जहाँ बैठकर भगवान् रामचन्द्र ने जनकपुर की प्रेमासक्त युवतियों को यह कहकर आश्वासित किया था कि 'तुमलोगों का सारा प्रेमाभिलाष मैं लीला-धारी कृष्ण बनकर पूर्ण करूँगा।'

बातों की रस-वर्षा हो ही रही थी, तबतक अचानक पायलों की झनकार सुन पड़ी; वर्षा के साथ-साथ झिल्ली-झनकार अत्यन्त श्रवण-सुखद प्रतीत हुई! एक रमणी ने हँसते-हँसते आकर कहा—"इतने दिनों के बाद बड़े भाग्य से बेचारे मिले भी, तो तुमलोग फँसाये लिये बैठी हो। कुछ रीति-रस्म होने पावेगी या नहीं?" इतना कहकर उसका जाना था कि हमारे पास बैठी हुई युवतियाँ, हमें पकड़कर बरबस एक ऐसे कमरे में ढकेल आई, जहाँ वही हमारी खोई हुई सम्पत्ति संचित थी! हमें घर में छोड़कर चारुहासिनी युवतियाँ चंचल चरणों से चली गई। एक बार उस घर के अगल-बगल के सायवान मधुर हास्य से मुखरित हो उठे! कुछ ही देर के बाद, एक झँझरीदार झरोखे की जाली से छनकर, एक कोमल खिलखिलाहट उस घर में आई। हम अपने जाग्रत स्वप्न का रहस्य समझ न सके। हमारे अन्तःकरण की अन्तःपटी में 'कौतूहल-कौतुक' नाटक हो रहा था। हम उसी अभिनव अभिनय को देख-देखकर मुग्ध हो रहे थे।

"जब प्रेमपात्र अपना मिलता है दिन बिताकर।
सच्चा सुप्रेम दिल का उठता है छलछलाकर॥
उस वक्त दुःख लज्जा भगते हैं भरभराकर।
सब ऊँच-नीच लघु-गुरु हो जाते हैं बराबर॥"

६

मार्गशीर्ष की पंचमी आ गई। मेला धीरे-धीरे उठने लगा। आधा से अधिक मेला बिखर गया। गाड़ी-छकड़े लद चले। हमारे मित्रों ने तीन दिन तक मेला-महार्णव का मन्थन किया; पर इस 'नन्दन-कानन-चारी' का पता ही नहीं!

हमने पचासों वादे किये। इक़रार पर इक़रार होते रहे। शपथ और प्रतिज्ञाएँ करते-करते हमारी जीभ बेचारी 'संकट-मोचन' का पाठ करने लगी! अनेक प्रकार के अभिवचनों का आदान-प्रदान हो लेने के बाद हम रुखसत हुए। पीली धोतियों का जोड़ा और एक गिन्नी, जिन्हें बिदाई की सहिदानी कहिये या प्रेम की चुनौती कहिये या यादगार की मुहर कहिये, हमारे हाथों में शोभा पा रही थी। रास्ते-भर वही विद्युल्लता हमारे हृदयाकाश में मचलती आई। न जाने किस जाहिल जौहरी ने ऐसा जगमग जवाहिर गँवाकर आसाम और बंगाल की खाक छानना पसन्द किया था!

घर पहुँचने पर अपने मित्रों से हमने सारी रामायण कह सुनाई। हमारी एकान्त कोठरी मित्रों के अट्टहास से बार-बार मुखरित हो उठी। हमारी 'पीत पुनीत मनोहर धोती' के एक कोने में बँधी हुई गाँठ से एक स्वर्णमुद्रिका खोलकर हमारे एक मित्र ने हमारी अँगुली में हँसते-हँसते धीरे से पहना दी। 'अशोक-वृक्ष के पल्लवान्तराल से चूकर सती सीता को सान्त्वना देनेवाली'—हमारी अङ्गुली को आलिङ्गित करके धन्य हो गई। कोठरी के बगलवाले कमरे से, जो हमारा सुसज्जित

शयनागार है, एक बार रुनझुन की मन्द-मधुर-ध्वनि सुन पड़ी। हमने खिड़की खोलकर देखा तो वही हमारी हृदयेश्वरी—वही माधुर्य्य-महोदधि की अमूल्य मणि—स्मितशाली कपोलों को अपने नीलांचल से ढँककर और अपने सुदीर्घ लोचनों की सुधास्निग्ध किरणों का जाल समेटकर बैठती हुई देख पड़ी। हमसे आँखें मिलते ही वह घर के एक कोने में लचीली लता की तरह चिपककर खिलखिला उठी। तबतक तो भाभी ने भीतरवाले सायबान से डाँटते हुए धीमी आवाज़ में कहा—'बस, होश करके, उधर मर्दाना बैठक है।'

७

"मीठी निगह की चाट पै दिल है लगा हुआ।
था उन रसीली आँखों में शरबत घुला हुआ॥"

आज भी हमारे ट्रङ्क मे वही केसरिया रंग में रँगी हुई धोतियों का एक जोड़ा, केवड़े के फूलों को गोद में लेकर, रेशमी रूमाल की ओढ़नी में सो रहा है! नहीं, हमारी स्मृतिशाला में जादू जगा रहा है!

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अब तो उस भुवन-मोहन रूप का एक 'धुँधला-सा चित्र' मात्र हमारे स्मृति-पट पर अङ्कित है। किन्तु उस 'सुगन्धित सुवर्ण की मूर्त्ति' की 'महिमा' आज भी हृदय पर स्वर्णवर्णाङ्कित है! वह लज्जा की लता अब हमारी हृदय-वाटिका में विद्यमान नहीं है; पर उसको सींचनेवाला नेत्र-माली आज भी उसके लिये आठ-आठ आँसू बहा रहा है! हमारे हृदय के

अरघे पर आज वह पवित्रता की प्रतिमा पूर्ववत् प्रतिष्ठित नहीं है; पर उसकी पूजा-सामग्री आज भी अरघे के पास ज्यों-की-त्यों पड़ी है !

अधिक क्या कहें, यह घटना हमारे हृदय की संचित सम्पत्ति थी। किन्तु इसे सहृदयों की सेवा में वितरित कर देने की इच्छा तभी हुई, जब कल प्रातःकाल हमने अपनी शय्या से उठते ही करतल निहारते समय देखा कि हमारी अँगुली को घेरकर बैठी हुई है वही—

"अनूठी अँगूठी !!"

मानमोचन

"धन्य है प्यारी तुम्हारी योग्यता,
मोहिनी-सी मूर्त्ति मञ्जु मनोज्ञता !
पा सका सौभाग्य से सहवास हूँ !
किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ !"

"दास बनने का बहाना किस लिये ?
क्या मुझे दासी कहाना इस लिये ?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो—
और देवी ही मुझे रक्खो अहो !"

—मैथिलीशरण गुप्त

❀ ❀ ❀ ❀

"The péace of God came into my life before the altar when I wedded her."

—*Tennyson.*

❀ ❀ ❀ ❀

सुतनु जहि हि मौनं मुञ्च वाचो जडत्वं,
प्रणयिनि मयि कोपं किङ्करे कि करोषि ?
अथ यदि तव चित्ते सापराधोऽस्मि बाले !
निजभुजयुगवल्लीबन्धनं मां विधेहि ॥

१

लावण्यवती 'लीला' 'ललित-ललाम' पढ़ रही थी। मेज़ पर किताब, किताब पर नज़र थी, हाथ पर कपोल था—मानों लाल कमल पर पूनो का चाँद विश्राम कर रहा हो। कुर्सी के पीछे मुकुन्दलाल चुपचाप खड़ा था। लीला को इसकी खबर न थी। वह तो 'ललित-ललाम' के लालित्य पर लट्टू हो रही थी कवि, के आलोकमय भाव-लोक की सैर कर रही थी, कल्पना के विमान पर चढ़कर काव्य-गगन मे विहार कर रही थी!

तल्लीनता की उस तरुण मूर्त्ति की सौम्य शान्त शोभा देखकर मुकुन्द मुग्ध हो रहा था। शुभ्र सुन्दर दुकूल से ढँकी हुई उस पुष्पराशि पर उसके नयन-मधुप मँड़ला रहे थे। कुम्भज ऋषि की तरह एक ही घूँट में उस सौन्दर्य्य-सागर को पीकर वह चुपके से पीछे की ओर हट आया।

पलँग पर बैठकर सोचने लगा—

"यह दिन-दिन व्रजभाषा का कीड़ा होती जा रही है। गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा सूरदास और संत-शिरोमणि कबीरदास के ग्रन्थों की ओर तो कभी फूटी नज़र से भी नहीं देखती। हजार बार कहा, लाख बार समझाया, कानों में तेल डाल लेती है। दादू, मलूक, मीरा और सुन्दर तो सुहाते ही नहीं। जब देखो तब देव, मतिराम, विहारी, पद्माकर और पजनेस को ही चचोड़ती रहती है। फिर भी इसका मस्तिष्क इतना शुष्क है कि कभी दिल खोलकर हँसती-बोलती तक नहीं। मन तो सदा आदि-रस में डूबा रहता है, और शरीर सदा शान्त

रस में ! ज़रा भी चुलबुलाहट नहीं। मस्ती का तो नाम नहीं। लोग कहते हैं, ब्रजभाषा पढ़ने से रसिकता बढ़ती है। ख़ाक बढ़ती है, सारी रसिकता सिकता हो जाती है। मधुमक्खियों की तरह शृङ्गार-रस का सारा काव्योद्यान चाट गई, फिर भी 'सहारा-मरुस्थल' ही बनी रही। दिल है कि रेगिस्तान रस की उमड़ी हुई नदियों को सोखता चला जाता है। ऐसी स्याही-सोख बीवी न-जाने किस पुराकृत पुण्य का परिणाम है !"

"चुहलबाजी से चिढ़ती है, खड़ी बोली से कुढ़ती है, चुटकियाँ लेने से झुँझलाती है, छेड़ने से छटपटाती है। अजीब हालत है। सोलहो आने गोबर-गणेश है। उसपर तुर्रा यह कि साड़ी रेशमी ही चाहिये। विना मखमली जूतियों के पैर दुखने लगते हैं। मगही पान की तबकदार गिलौरियाँ न हों तो बेचारे पनबट्टे पर सारा गुस्सा खतम हो जाय। दिन-भर गिलौरीदान खाली करना और उगालदान भरते रहना। बस इतनी ही कमाई है। दाँतन से जबड़े छिल जाते हैं ! 'दन्त-प्रभाकर' ज़रूर चाहिये ! 'केशरंजन' और 'जवाकुसुम' की खाली शीशियों से घर भर गया। 'फूलों का दूध' और 'हिमानी' की शीशियाँ हमेशा मेज़ पर कंघी-शीशे के पास पड़ी रहती हैं। शौकीनी तो यहाँ तक है, मगर ज़रा-सी गलबहियाँ डाल दूँ तो भदौआ मेढक की तरह उछल पड़ेगी। अगर इस समय कुर्सी खींचकर बग़ल में चुपचाप भी बैठ जाऊँ, तो इसे खटमल काटने लगेंगे, कुर्सी पटकेगी, नाक-भौं सिकोड़कर नौकर की चपतगाह गरमाने लगेगी।"

"हर तरह से आफ़त है। बीवी के बदले खुदा मियाँ ने मेरे सिर यह बला मढ़ दी। सब कुछ करते हुए भी अगर खद्दर की

साड़ी पहनती, चरखा कातती, 'भारत-भारती' पढ़ती, तो मैं समझता कि मेरा असहयोग-व्रत किसी हद तक सफल हुआ। लेकिन यहाँ तो खद्दर देखते ही एक सौ पाँच डिग्री बुखार चढ़ जाता है। व्रजभाषा के चरखे से फ़ुर्सत ही नहीं, रुई-सूत का चरखा कौन चलावे? 'रसराज' और 'पजनेस-पचासा' के सामने 'भारत-भारती' की बिसात ही क्या है? इसे तो बस किसी एक कवित्त का यही टुकड़ा याद है—"जो न जानै व्रजभाखा ताहि साखा-मृग जानिये!" जब कभी बहस में पेश न पायेगी तब झट यही कवित्त की टूटी टाँग पेश कर देगी। चलो बस मामला वहीं ख़तम हुआ। खड़ी बोली वाले शाखामृग हैं, तो न-जाने व्रज-भाषा वाले क्या हैं, खुदा जाने। शाखामृग न होंगे, तो थलमृग या जड़मृग, कुछ तो होंगे ही।"

"व्रजभाषा ने मेरा घर तो चौपट किया ही, सारे देश को तहस-नहस कर दिया। व्रजभाषा के करते सारा देश तो हिजड़ा हुआ ही था, मेरी बीवी भी हिजड़ी हो गई। इतनी नफ़ासत और नजातक सिर्फ औरों की आँखें सेंकने के लिये है। मेरी आँखें सिकती नहीं, जलती हैं। यह विलासिता का आडम्बर किंशुक-कुसुम की तरह निर्गन्ध है। यह लावण्य-लहरी फल्गु-नदी की तरह अन्तस्सलिला भी नहीं, बल्कि अंतस्तप्ता है।'

"पढ़ती तो है 'जगद्विनोद'; मगर मनोविनोद की एक भी कला मालूम नहीं। नेत्र-वर्णन के सैकड़ों सवैये सुना देगी, मगर किस काम के? आँखें नचाना नहीं आता! अधर-वर्णन सुनाने के समय जबान डाकगाड़ी बन जाती है, मगर एक बार भी मुस्कराकर 'प्राणप्यारे' कहने के लिये अगर कहीं आग्रह कर

बैठूँ, तो निगोड़ी ज़बान बालिश-ट्रेन को भी मात कर दे। पत्थर पड़े ऐसी ज़बान पर।"

२

सोचते-सोचते मुकुन्दलाल इतना खिन्न हो गया कि बेतरह ऊबकर उक्त 'अंतिम वाक्य' बड़े जोर से बोल उठा।

मानिनी लीला चौंक पड़ी। व्रजभाषा का अपमान सहन करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। उसने समझ लिया कि निश्चय ही व्रजभाषा पर यह अभिशाप है। सरोष दृष्टि से मुकुन्दलाल की ओर देखती हुई बोली—"कौन-सी ज़बान पर पत्थर पड़े ? व्रजभाषा पर ?"

मुकुन्दलाल बड़ा प्रसन्न हो गया कि भला छेड़ने से कुछ बोली तो सही, स्टीम गरम रखना चाहिये, जितना ही भड़केगी, उतना ही दिल बहलेगा, काम निकलेगा। बोला—"तुम्हारी खोपड़ी में तो व्रजभाषा के सिवा और कुछ है ही नहीं। हर-एक बात में व्रजभाषा। बात-बात में व्रजभाषा। धत्तेरी व्रजभाषा की ऐसी-तैसी ! चंद्रमा, हिरन, कोयल, खंजन और हंस न होते, तो व्रजभाषा पैदा भी न होती। और अगर हुई भी, तो उसमें 'हाय-हाय' के सिवा और है ही क्या ?"

लीला—"आज आप इतने झल्लाये हुए क्यों हैं ? क्या किसी सार्वजनिक सभा में आपके व्याख्यान पर तालियाँ नहीं पिटी हैं ? या किसी सभा-समिति के अधिवेशन में आपका प्रस्ताव बहुमत से गिर गया है ? माजरा क्या है ? व्रजभाषा को तो आप कहते हैं कि चंद्रमा और हंसादि के अभाव में पैदा ही

नहीं होती, तो क्या देश की दरिद्रता के अभाव में खड़ी बोली पैदा होती? ब्रजभाषा में विरह-वर्णन बहुत है, तो क्या खड़ी बोली में गुलामी का रोना और महँगी की हाय-हाय नहीं है? ब्रजभाषा पर आप सदैव खड्गहस्त रहते हैं। इसका कारण क्या है? ब्रजभाषा के पास जैसी चीजें हैं वैसी एक भी चीज कहीं दिखलाइयेगा?"

मुकुन्दलाल—"शब्द-जाल के सिवा उसके पास और कौन-सी चीज है? बाहर जितना ही भड़कीला शब्दाडम्बर है, भीतर कहीं उससे भी अधिक खोखला-पन है। 'ढोल में पोल' अक्षरशः चरितार्थ है।"

लीला—"दलील में जलील होने के डर से इस कदर सहृदयता का गला न घोटिये। खड़ी बोली का दम भरने चले हैं, तो बताइये न, उसकी कितनी कविताएँ कंठस्थ हैं? दो-चार भी तो सुनूँ? जो आपको सबसे अच्छी जँचे वही सुनाइये। जरा देखूँ, आपकी कसौटी सचमुच सोना कसने के लिये है या डंडीमार खटिक का बटखरा ही मात्र है।"

मुकुन्दलाल—"तुम्हारी तरह यदि मैं रात-दिन कविताएँ पढ़ता रहूँ, तो एक महीने के अन्दर-ही-अन्दर पागल हो जाऊँ। कविता तो केवल मनोरंजन के लिये है। व्यसन हो जाने पर तो फिर 'सरगौ नरक ठिकाना नाहिं!' मुझे चुनिन्दा कविताएँ याद नहीं हैं, पर मैं पुस्तकें खोलकर दिखला सकता हूँ।"

लीला—"बस? हेंकड़ी हवा हो गई? क्षण ही भर में डींग डावाँडोल हो गई? आप इतने ही पानी में हैं? तब तो व्यर्थ ही फुदकते हैं। याद रखिये—

'पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्।
प्राप्ते तु गाढसमये न सा विद्या न तद्धनम्' ॥"

मुकुन्दलाल—"अच्छा, तुम भी कहती ही रहोगी, लो सुनो; ज़रा खूब ग़ौर से यह भी देखती चलो कि इस कविता में कैसा नवीन सन्देश है, कितना ऊँचा तथ्य है, कैसी आडम्बर-शून्यता है, और कितनी सामयिकता है—

'है बदलता रहता समय उसकी सभी बातें नई।
कल काम में आती नहीं हैं आज की बातें कई।
है सिद्धि-मूल यही कि जब जैसा प्रकृति का रंग हो।
तब ठीक वैसा ही हमारी कार्य-कृति का ढंग हो॥
प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियाँ जो हों बुरी।
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस-जैसी चातुरी।
प्राचीन बातें ही भली हैं, यह विचार अलीक है।
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है'॥"

लीला—"शायद इस कविता को अपने व्याख्यान के बीच में कहकर जनता पर प्रभाव जमाने के लिये याद कर लिया है! क्यों? यह चुनिन्दा चीजों में से है न?"

मुकुन्द—"तुम इस तरह व्यंग्य के तीर क्यों छोड़ती हो? तर्क और ताने से क्या तअल्लुक़? घबराती क्यों हो? चुनिन्दा चीज चाहिये न? यह लो—

'नीलाम्बर-परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग-मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मंडल हैं।
बन्दीजन खगवृन्द शेष-फण सिंहासन हैं।

करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की।
हे मातृभूमि तू सत्य हो, सगुण मूर्त्ति सर्वेश की' ॥"

लीला—"यही चुनिन्दा चीज है ?"

मुकुन्द—"इससे भी बढ़िया है। दिखाऊँ पुस्तकें ?"

लीला—"कौन-सी पुस्तक दिखलाइयेगा ? 'भारत-भारती' और 'त्रिशूल-तरंग' के सिवा और है ही क्या ?"

मुकुन्द—"बस करो, तुम्हारी जानकारी की थाह लग गई। अभी तो ऐसी-ऐसी चीजें हैं कि देख लो तो चक्कर आ जाय।"

लीला—" 'प्रिय-प्रवास' और 'पथिक' देखकर तो चक्कर नहीं आया, अब और अगर कोई चकरानेवाली चीज नई निकली हो, तो बताइये, मैं दुराग्रह न करूँगी।"

मुकुन्द—" 'कविता कलाप' देखा है ?"

लीला—"और भी कुछ है या 'कविता-कलाप' ही पर इति-श्री का शख बजेगा ? जो कुछ हो सो सब कह डालिये।"

मुकुन्द—"अच्छा, 'कविता-कौमुदी' का दूसरा भाग देखा है ?"

लीला—"आप अपनी जानकारी का हाल बयान कीजिये। मुझसे न पूछिये कि मैंने क्या देखा है और क्या नहीं देखा है। हिन्दी-कविता की कोई अच्छी-से-अच्छी नई या पुरानी पुस्तक ऐसी नहीं है, जो मेरे देखने में न आई हो। जनाब, मेरे पिता सभी हिन्दी-प्रकाशकों के स्थायी ग्राहक हैं !"

मुकुन्द—"सो तो मुझे मालूम है। और, यह भी मालूम है कि तुम मायके में किताबों के सफे चाट जाया करती थी। मैंने समझा था तुम्हे विद्यानुरागिणी, और तुम निकल आईं विकट

विरागिणी ! अल्लाह मियाँ की कुदरत, मेरी किस्मत का पाँसा उलटा पड़ गया ।"

लीला—"(बीच ही में बात काटकर) चर्चा हो रही है कविता की, और आप ले उठे किस्मत का चर्खा ! वाह जी वाह ! मालूम होता है, 'कविता-कौमुदी' के दूसरे भाग से आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं है । इसीलिये बात टाल रहे हैं। है न बात ऐसी ही ?"

मुकुन्द—"फबती क्यों उड़ाती हो ? अभी 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' तुम्हारा मुँह बंद करने के लिये काफी हैं । 'काश्मीर-सुषमा' और 'रामचरितचिन्तामणि' तुम्हारी ब्रजभाषा के अच्छे-से-अच्छे ग्रंथों के साथ टक्कर ले सकते हैं । अभी तुम गफलत में भटक रही हो ।"

लीला—"माफ कीजिये, अपना दोष व्यर्थ ही मेरे सिर न मढ़िये । आपने अभी-अभी बहुत ठीक कहा था कि आप यदि मेरी तरह रात-दिन कविताएँ पढ़ा करते तो एक ही महीने में पागल हो जाते । दर्जनों पुस्तकों के नाम बतला गये; पर किसी एक में से एक पंक्ति भी नहीं सुनाई । रणभूमि में ताल ठोंकने से पहले शस्त्र-प्रहार करना चाहिये । बतलाइये तो 'कविता-कौमुदी' के दूसरे रूप मे कौन-सी कविता आपको सबसे अच्छी जँची है ?"

मुकुन्द—"मुझे सिर्फ दो ही निहायत पसंद हैं । एक तो आधुनिक काल के कविता-कामिनी-कान्त शंकरजी की है और दूसरी 'धाराधर-धावन' तथा 'स्वदेश-कुंडल' वाले 'पूर्ण' जी की । दोनों ही अगड़धत्त कवि हैं । ध्यान से सुनना—

'सब जड़ाऊ भूषणों के सोहने शृङ्गार थे।
कंठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे।
पीन कृश उकसे कसे कोमल कड़े छोटे बडे।
गुप्त सारे अंग साड़ी की सजावट में पड़े॥'

और

'अच्छे-अच्छे फुलवा बीनरी मलिनियाँ गूँधि लाव नौकोर हार'।
फुलन की हरवा गोरी गरे डरिहौं सेजिया माँ होय रे बहार।
चैत मास की सीतल चाँदनी रसे-रसे डोलत बयार।
गोरिया डोलावै बीजना रे पिय के गरे बाहीं डार।
बागन माँ कचनरवा फूले बन टेसुवा रहे छाय।
सेजिया पै फूल झरत रे जब हीं हँसि-हँसि गोरी बतराय'॥"

लीला—"बस-बस, रहने दीजिये। व्रजभाषा पर तो आप व्यर्थ ही शृंगार रसमयी होने का दोष लगाते हैं। आपके यहाँ भी तो शृंगार-रस ही की भरमार है। मालूम होता है, घर में आप सदा शृंगार-रस में ही डूबे रहते है, सिर्फ बाहर सभा-सुसाइटियों में ही देशभक्ति-रस की धारा बहाते हैं! उस दिन तो सेवा-समिति के सालाना जलसे में आप बड़े करुणार्द्र स्वर से कह उठे—

'शस्य से श्यामला भूमि में इस तरह,
अन्न का वस्त्र का धन का टोटा पड़ा;
रत्नगर्भा के लालों को परदेश में,
कौड़ियों में कुली बन के जाना हुआ।'

"मगर आज तो आप दूसरा ही राग अलापते हैं। आपका आशय मैं खूब समझती हूँ। 'नारियों के सदुपयोग' पर बेकार

ही लेक्चर झाड़ते फिरते हैं। 'त्याग में ही सच्चा सुख है'— इस नाम की अपनी पुस्तक जला दीजिये। क्यों दुनिया को धोखा दे रहे हैं? 'परोपदेशे पाण्डित्यं' आप-जैसे असहयोगी को शोभा नहीं देता।"

मुकुन्द—"बस करो, गुरुआनी बनकर शिक्षा मत दो। मेरा आशय समझती हो, तो समझती रहो। समझीं, तो बेकार; न समझीं, तो भी बेकार। तुम्हारे समझने और न समझने से कुछ आना-जाना नहीं है। यह बताओ कि मैं जो कविताएँ सुना चुका हूँ उनसे भी अच्छी कोई कविता तुमने 'कौमुदी' में देखी है?"

लीला—"हाँ, जरूर देखी है, और बहुत अच्छी देखी है। आपने तो शंकरजी के बहुत ही साधारण पद्य को अत्युत्तम मान लिया है। इससे भी उनकी अच्छी-अच्छी लाइनें हैं। देखिये एक-आध—

(माँग-वर्णन)

'कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है
कि श्याम घनमंडल में दामिनी की धारा है,
'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है
कि तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।'

(भृकुटी-वर्णन)

'शंकर कि भारती के भावने भवन पर
मोह-महाराज की पताका फहरानी है।'

"और पूर्णजी का 'बिरहा' जो आपने सुनाया है, उससे मेरे कहे हुए उनके इस वसंत-वर्णनवाले कवित्त का मिलान

कीजिये। 'कौमुदी' में उनके एक कवित्त का अंतिम चरण कितना सुन्दर है!—

'जिन सों बनी न कछु करत मकानन में।
तिन सों बनैगी करतूत कौन कानन में?'

(वसन्त-वर्णन)

'चम्पक निवारी दौना मोगरा चमेली बेला
गेंदा गुलदाउदी गुलाब सोभासाली है;
केतकी कनैल गुलसब्बो गुलेनार लाला
हीना जसवंत कुंज केवड़ा की बाली है;
'पूरन' बिबिध चारु सुन्दर प्रसूनन की
छटा छितिमंडल पै छै रही निराली है;
पूजन को मानों बनमाली के चरन-कंज
साजत बसन्त-माली फूलन की डाली है'।'

मुकुन्द—"हाँ-हाँ, समझ तो गया, ब्रजभाषा के छन्दों का तर्ज जहाँ-कहीं होगा, तुम्हें जरूर पसंद पड़ेगा।"

लीला—"मुझे ही क्यों, हर-एक सहृदय मनुष्य ब्रजभाषा के छन्दों का तर्ज पसंद करेगा। आपकी खड़ी बोली के कवि भी जब कभी ब्रजभाषा की शरण लेते हैं, उनकी प्रतिभा का चमत्कार अनूठा हो जाता है। खड़ी बोली के महाकाव्य-प्रणेता 'हरिऔधजी' के 'प्रेमाम्बु-प्रवाह' की एक कविता देखिये—

'वेई गुरु वेदन गनित गोप गोपी गाय,
गौरव गहत गारि गरव गजब सूल;
वेई तजे तृन तरु बकुल तमाल ताल,
ताजे होइ तोषत दगन तामरस तूल;

'हरिऔध' आये आज आनँद-अगार ऐन,
वेई अकुलाये अंग भये अति अनुकूल;
वेइ कल हीन कोक केकी क्रौञ्च कोकिलादि,
कलरव करत कलिन्दजा कलित कूल।'

"अब मिलाइये उनकी उन अन्य रचनाओं से, जिन्हें पाकर आपकी खड़ी बोली कृतार्थ हुई है। मैं तो उन्हें इसी कविता के लिये पूजती हूँ।"

मुकुन्द—"तुम इसी कविता को 'कौमुदी' में सर्वोत्तम समझती हो क्या? यह भी तो अनुप्रास का अखाड़ा ही है।"

लीला—"जनाब, 'कौमुदी' को ज़रा फिर ग़ौर से उलट जाइये। भ्रम दूर हो जायगा। उसमें यह नहीं है! मैं 'कौमुदी' की 'दूसरी किरण' के प्रकाश में इस कविता के अन्दर एक अजीब जगमगाहट देखती हूँ—

'जिनके शुभ्र स्वच्छ हिय-पट पर जग-विकार का लगा न दाग।
भरा हुआ है अटल जिन्हों में केवल मातृ-देवि-अनुराग।
जिनकी मृदु-मुसुकानि सरलता-विकसित गालों की है लाली।
देख-देख सुन्दर फूलों को रचता है जग का माली।
बँधी हुई मुट्ठी को जिनने अबतक नहीं पसारा है।
जिनको हाथों से पैरों का अधिक अँगूठा प्यारा है।
भावी भारत-गौरव-गढ़ की सुदृढ़ नींव के जो पत्थर।
आर्य-देश की अटल इमारत का बनना जिनपर निर्भर।
उन्हीं अनूठे कानों में यह मेरी स्वरमय आत्म-पुकार।
पहुँचे आशा-लता की जड़ में जिसमें होय शक्ति-संचार'।"

मुकुन्द—"याद रहे, यह खड़ी बोली की रचना है।"

लीला—"मैं कब कहती हूँ कि ब्रजभाषा की है? इतनी जल्दी आप अधीर क्यों हो जाते हैं? इससे तो यही साबित होता है कि अभी आपके यहाँ रत्नों का टोटा है। आपने शायद इस-लिये घबराकर खड़ी बोली का दावा पेश कर दिया कि मैं कहीं इसे ब्रजभाषा की रचना न कह डालूँ! जनाब, यहाँ तो एक-से-एक बेशकीमत लाल पड़े हुए हैं; कोई सैकड़ों लूट ले जाय, कुछ परवा नहीं। कारूँ का खजाना है!"

मुकुन्द—"सैकड़ों वर्षों से जिसका शृङ्गार होता चला आ रहा है, उससे खड़ी बोली का मुकाबला करना ही अन्याय है। यह तो अभी हाल ही की है।"

लीला—"अब आये आप सीधी राह पर।"

मुकुन्द—"मैं कभी पथभ्रष्ट नहीं हुआ। मैं तो तुमसे हमेशा कहा करता हूँ कि ब्रजभाषा का युग बीत गया, अब आया खड़ी बोली का ज़माना। अपने-अपने समय में सबकी शोभा होती है। दोनों दो चीजें हैं, मुकाबला करना बेकार है।"

लीला—"ब्रजभाषा का युग बीत गया, तो अच्छा ही हुआ। इस भिखमंगी के ज़माने में बेचारी सूखकर काँटा हो जाती। जिस समय उसकी तूती बोलती थी, उस समय भारतवर्ष अन्नपूर्णा का मंदिर था। आज वह चिरदरिद्र हो गया है। इसीलिये तो आजकल की हिन्दी-कविता का तर्ज़ और वज़न भी फ़कीराना हो गया है—

'एक पैसा पाव भर आटा दो खुदा की राह पर'!"

मुकुन्द—ब्रजभाषा केवल महलों में माखन-मेवा-मिसर

खाकर पली। उसे दरिद्रों के झोपड़े तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। वह अमीर-उमरा के मनोरंजन की सामग्री बनी रही। दुर्भिक्ष-दारिद्र्य-दलित देश के साथ उसकी सहानुभूति नहीं रही। किन्तु खड़ी बोली ने भारतवर्ष के हृदय की ध्वनि से दिशाओं को गुँजा दिया। जनता की आह के प्रकट करने में वह एक ही रही। देश की आकांक्षाओं के व्यक्त करने में उसने प्रभात-पवन और संध्या-समीरण को भी मात कर दिया। वह बेज़बान निहत्थे गरीबों की आत्म-रक्षा के लिये आकाश-पाताल एक कर डालती है। और ब्रजभाषा क्या करती है, सो तो उसकी पहली करनी-करतूत से ही जाहिर है। नाज़ुक-ख़याली के पीछे नज़ाकत यहाँ तक बढ़ी कि सारा देश नाज़नीन से भर गया। विलासिता भी अमृत पीकर निश्चिन्त हो गई। साहित्य की धारा ही पलट गई। पार्थ के सारथी भी केलिकुंज के कुँवर-कन्हैया बन गये। गीता की जगह एक ऐसी बाँसुरी ने ले ली, जो आधी रात को कालिन्दी-कूल पर कुलवधुओं को खींच लाती थी।"

लीला—"जनाब, घबराइये नहीं, उर्दू-बीबी की सोहबत से खड़ी बोली में भी नजाकत आती जा रही है। 'भूख' को 'भूक', 'धोखा' को 'धोका', 'ठंढा' को 'ठंडा', 'ख़्वाह-म-ख़्वाह' को 'खामुख़्वाँ', 'सुभीता' को 'सुबीता', 'घरौंधा' को 'घरौंदा', 'लाठी' को 'लाटी', 'थोथी' को 'थोती', और 'क्यों' को 'क्यूँ', तथा 'यों' को 'यूँ' लिखने लगे। लक्षण अच्छे नहीं हैं। दो स्त्रीलिङ्ग 'आँखों' के बीच में रहकर जैसे 'नाक' को भी स्त्रीलिङ्ग हो जाना पड़ा और 'कटि' तथा 'भुजा' के संसर्ग से जैसे 'तलवार'

को लोगों ने 'नंगी नारि' कहते-कहते स्त्रीलिङ्ग बना डाला, वैसे ही खड़ी बोली भी उर्दू और ब्रजभाषा के घिस्से खाते-खाते चिकनी चवन्नी बन जायगी। ख, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ और भ से घृणा होने ही लगी, कुछ ही दिनों में देख लीजियेगा, खड़ी बोली ऐसा 'लखनौआ तर्ज' पकड़ेगी कि 'पड़ी बोली' हो जायगी। ब्रजभाषा के विषय में अभी जो आपने अपनी राय दी है, उसपर एक पुस्तक लिख डालिये, जैसे कविवर त्रिपाठीजी ने ब्रजभाषा के शृंगारी कवियों की लंतरानी सुनाने के लिये 'हिन्दीसाहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लिख डाला है!"

मुकुन्द—"वास्तव में ब्रजभाषा के शृंगारी कवियों ने समाज की नसें ढीली कर दी हैं। त्रिपाठीजी के कथन की वास्तविकता तुम्हारी समझ मे नहीं आ सकती। उनकी बातें तुम्हारे लिये अप्रिय सत्य से भी कड़वी हैं।"

लीला—"जनाब, ब्रजभाषा-युग में यहाँ रोज ही घर-घर अन्नकूट था और आज घर-घर चूहों की कुश्ती हो रही है। वह मौज का ज़माना था, तब ही तो कल्पना की उड़ान आसमान की आखिरी तह को भी छेदकर निकल जाती थी। आज यह देश 'गजभुक्त कपित्थवत्' हो रहा है, इसलिये लाख सिर मारने पर भी आजकल की कविता 'गजभुक्त कपित्थवत्' ही हो जाती है। देश का पेट खाली है, दिमाग भी खाली है। पेट भरने लगेगा, कवियो से 'भारत' का पिंड छूट जायगा। ब्रजभाषा-वाले चैन की वंशी बजाते थे, इसलिये ब्रजराज की वंशी के पीछे पड़े रहते थे। जबतक देश के पेट में चूहों का कलाबाजी

खेलना बंद न होगा, तबतक खड़ी बोली की कविता का प्रवाह स्वच्छन्द न होगा।"

मुकुन्द—"क्या खूब! तुम ऐतिहासिक सिद्धान्तों और प्रमाणों से खड़ी बोली की कविता को नीचा दिखाना चाहती हो। बेशक बड़ी हिम्मत बाँधी है।"

लीला—"इतिहास की बात अगर जाने दीजिये, तो भाषा की दृष्टि से भी कविता और बोलचाल की भाषा भिन्न-भिन्न होनी चाहिये! रोज़मर्रा की भाषा में कवित्व और चमत्कार कहाँ से आ सकता है?"

मुकुन्द—"तुम्हारी समझ में तो बस कवित्व और चमत्कार ब्रजभाषा के तुकान्त छंदों के लिये ही रिज़र्व है।"

लीला—"इसमें क्या शक? अच्छे मौके से याद पड़ी, खड़ी बोली की एक तुकान्त कविता सुनिये—

"भगवान तेरी माया, सारे जहाँ में छाया!
मुनियों को है नचाया, दुनिया में रंग लाया।"

"कितना शुद्ध तुकान्त है? जान पड़ता है कि इसका लेखक 'बेताबजी' का 'प्रासपुंज' घोख गया है! ब्रजभाषा में इस कदर तुकों की तोबातिल्ला नहीं मचती।

मुकुन्द—"तुक को गोली मारो। देखो कि कविता का भाव कितना सुन्दर है। असल चीज तो भाव है। देहातों में बहुत-सी ऐसी ठेठ कविताएँ प्रचलित हैं, जिनकी भाषा बिलकुल सीधी-सादी और टकसाली है; पर भाव चुभते हुए हैं। देखो, एक ही भाव को तुलसी और कबीर ने कविताबद्ध किया है; मगर भाषा को परखो तो दोनों दूर-दूर हैं—

(१) 'करते कर्म करै विधि नाना।
मन राखे जहँ कृपानिधाना॥'
(२) 'ठाढ़े, बैठे, पड़े, उताने।
कह कबीर मैं उसी ठिकाने॥'

"फिर देखो, एक देहाती दोहा कितना सादा और कैसा भावपूर्ण है—

'सोना लेने पिउ गये, सूना हो गया देस।
सोना मिला न पिउ फिरे, रूपा हो गये केस॥'

माननी लीला यह दोहा सुनते ही उछल पड़ी। बोली—"वाह-वाह-वाह! ज़रा मुक़र्रर फरमाइये।"

मुकुन्द ने दोहे को दुबारा दुहराकर उसे बुलबुल बना दिया। लोटपोट हो गई। हाथ मिलाने के लिये हाथ बढ़ाया। सुअवसर पाते ही मुकुन्द ने खींचकर भुजपंजर में चॉप लिया!

खोपड़ी के अन्दर

अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विश्लेषभीरुता ।
नादृष्टे न च दृष्टेन भवता विद्यते सुखम् ॥

× × × × ×

Her loveliness with shame and with surprise
Froze my swift speech: she turning on my face
The star-like sorrows of immortal eyes,
Spoke slowly in her place :

—Tennyson.

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

मेहरबाँ होके बुला लो मुझे चाहो जिस वक्त़ ।
मै गया वक्त़ नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ ॥

—ग़ालिब

१

केदार के पिता मुंशी देवीनन्दन पटने के ज़मींदार लाला हरप्रसाद के पुराने खैरख्वाह नौकर हैं। ज़मींदारी का सारा इन्तज़ाम उन्हीं के हाथ मे है। लालाजी ने अपना कुल कारोबार उन्हें ही सौंप दिया है। वे नहीं जानते कि ज़मींदारी में कहाँ क्या हो रहा है। मुंशी देवीनन्दन भी बड़ी ईमानदारी से अपनी ज़िम्मेदारी निबाहते हैं।

केदार का घर पटने से कुछ दूर देहात में है। घर पर अकेली उसकी माता रहती है; क्योंकि उसे शहरी जिन्दगी बिलकुल पसन्द नहीं। केदार लड़कपन से ही अपने पिता के साथ लालाजी के घर पर रहता है। वह अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा है—चार आँखों में एक ही पुतली है!

लालाजी को सब लोग 'विभु बाबू' कहते हैं। एक लड़की के सिवा उनके और कोई सन्तान नहीं। पुत्र के लिये बड़े-बड़े यत्न किये, पर तकदीर के सामने तदबीर की न चली। केदार को ही अपने लड़के की तरह मानते और लाड़-प्यार करते हैं।

एक बार मुंशीजी चारों धाम की तीर्थयात्रा करने गये, तो एक जड़ी लेते आये। प्रसाद के साथ विभु बाबू को जड़ी भी दी और उसके गुणों का बहुत बखान किया।

विभु बाबू ने उदास होकर कहा—"इन लकड़ियों और घास-पत्तियों पर अब मेरा कुछ विश्वास नहीं रहा। इन्हें कूड़े-करकट में फेंक दीजिये।"

मुंशीजी बड़े आस्तिक और श्रद्धालु थे। बोले—"नहीं सरकार! ऐसा मत कहिये, बड़े-बड़े यज्ञ से जो काम नहीं बनता, उसे सिद्ध साधु की एक जड़ी बना देती है। सन्त-महात्मा तो विधाता की टाँकी भी मिटा देते हैं।"

विभु बाबू—"दुनिया में सब पर से मेरा विश्वास उठ गया। कलियुग में कोई शुभ कर्म नहीं फल सकता। सब करके हार गया। अब ईश्वर से प्रार्थना करना भी छोड़ दिया।"

मुंशीजी की सारी चेष्टा बेकार हो गई। किन्तु विभु बाबू की स्त्री ने जब यह हाल सुना, तब तो उसके आनन्द की सीमा न रही। उसने मुंशीजी से पूछकर जड़ी का उपयोग किया। मनोरथ का वृक्ष विश्वास के शुद्ध जल से सींचने लगी। ईश्वर की कृपा से फल भी उत्तम मिला।

एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। खुशियाँ मनाई जाने लगीं। मुंशीजी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। केदार तो हथेली का फूल बन गया। मुंशीजी ने लड़के को पाँच कौड़ियों में खरीदा, इस लिये कि जीता रहे; और विभु बाबू की स्त्री के लिये वे ईश्वर से कम भी तो नहीं थे। वह तो उनको इष्टदेव की तरह मानने लगी। सब लोग कहने लगे—"आखिर करते तो सब कुछ ईश्वर ही हैं, मगर मुंशीजी ने उजड़ा घर बसा दिया।"

२

विभु बाबू की कन्या 'वसुन्धरा' और 'केदार' एक ही शिक्षक से पढ़ने लगे। विभु बाबू दोनों को कभी मोटर पर हवा खिलाते, कभी दरिया की सैर कराते, कभी तमाशे दिखाते

और कभी तरह-तरह के खिलौने खरीदकर खुश करते। मुंशीजी को कभी केदार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

केदार भी विभु बाबू के साथ ही प्रसन्न रहता। खेलता भी तो केवल वसुन्धरा के संग। वसुन्धरा की माता भी उसे अपनी तीसरी सन्तान समझती।

कुछ सयानी होने पर 'वसुन्धरा' कन्या-विद्यालय में पढ़ने लगी और केदार सिटी-स्कूल मे भर्ती हुआ। केदार की सुन्दरता और प्रतिभा वसुन्धरा से कम न थी। मगर कभी-कभी विभु बाबू के सामने जब दोनों की परीक्षा होने लगती, तब वसुन्धरा नम्बर मार ले जाती ! फिर भी केदार को विभु बाबू हरदम उत्साहित करते रहते।

केदार स्कूली शिक्षा पा चुकने पर कालेज में भर्ती हुआ। जिस साल वह कालेज में भर्ती हुआ, उसी साल विभु बाबू के लड़के पचकौड़ी बाबू सिखाने-पढ़ाने के लिये उसके हवाले किये गये। पचकौड़ी बाबू का वह संरक्षक बना दिया गया। वे उसी के साथ टहलते-घूमते, खाते-पीते, पढ़ते-लिखते और सोते-बैठते। मुंशीजी अपने सौभाग्य पर फूले अंग न समाते।

केदार जब बी० ए० में पहुँचा, तब उसकी शादी की सिफारिशें आने लगीं। विभु बाबू ने कहा—"केदार की शादी हौसले से करूँगा। इसलिये वसुन्धरा की शादी करके ही उसकी शादी की सिफारिश सुनूँगा।"

तीन-चार वर्षों से वसुन्धरा की शादी की तैयारियाँ हो रही थीं; मगर कहीं शादी ठीक न हुई। कहीं वर अच्छा मिलता तो घर खराब, और घर अच्छा मिलता तो वर खराब। अगर

कहीं दोनों अच्छे मिलते तो लेन-देन में नहीं पटती। तिलक-दहेज के बखेड़े ने वसुन्धरा को सयानी होने पर भी क्वाँरी रहने के लिये बाध्य कर दिया!

केदार ग्रेजुएट हो गया। मुंशीजी प्रायः अपने घर जाया करते थे। केदार की माता बरसों से पतोहू का मुँह देखने के लिये तरस रही थी। जब कभी मुंशीजी घर जाते, वह केदार की शादी के लिये बहुत गिड़गिड़ाती। मुंशीजी कहते—"केदार की शादी विभु बाबू के हाथ में है। जब वे चाहेंगे, तभी शादी होगी। मैं कुछ नहीं कर सकता। मुझपर तो बस वसुन्धरा की शादी का भार है। उसकी शादी आज हो जाय, तो कल ही विभु बाबू पर दबाव डालकर मैं केदार की शादी करा लूँगा। मगर इस समय उनके सामने मेरी जबान नहीं खुल सकती। उन्होंने ही केदार को पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। अब शादी में एक-दो साल देर होने के कारण उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करना बड़ी भारी नमकहरामी होगी।"

केदार की माता ने विभु बाबू की स्त्री के पास गुप्त सन्देश भेजा। उसमें यह एक बात बड़े मार्के की थी—"मैं घर में अकेली हूँ। बरसों से सोच रही हूँ कि पतोहू आ जाती, तो सेवा करती, बुढ़ापे में सुख देती, घर में प्रेत की तरह मैं अकेली न रहने पाती, दिल बहलता, साध पूरी होती और घर भी आबाद होता।"

इसी बात ने विभु बाबू की स्त्री के हृदय पर गहरा डाला। स्त्री की आकांक्षाओं का मूल्य स्त्री ही समझ सकती है

उसने विभु बाबू से कहा—"लड़की की शादी तो अपने काबू की बात नहीं है; जब प्रारब्ध होगा, तब आप-से-आप संयोग जुट जायगा। मुंशीजी के लड़के की शादी अब मत रोकिये। लड़की तो हरदम घर में आँखों के सामने रहती है, पर लड़का चारों ओर घूमता-फिरता है—सयाना हो ही गया—पढ़-लिख-कर होशियार भी हो गया—अगर कहीं बदचलन हो जाय, तो मुंशीजी भले ही कुछ न बोलें, उनकी स्त्री तो बड़ा उलहना देगी। केदार का विवाह कर डालिये—"

विभु बाबू बीच ही में बोल उठे—"तुम्हारे कहने से पहले ही मैं मुंशी हलधारीलाल की लड़की से उसकी शादी ठीक कर चुका। इसी साल शादी होगी। मुंशी देवीनन्दन ने इस सम्बन्ध को पसन्द किया है। दोनो ही अपने कारिन्दे हैं और दोनों ही बड़े भलेमानस। अगर ऐसा सम्बन्ध हो जाय, तो फिर क्या पूछना है। इसीलिये मैंने ठीक करा दिया है। केदार की माता के पास भी खबर भेज दी थी। उनकी इच्छा है कि पतोहू को देखकर शादी की जाय। मुंशी हलधारीलाल लड़की दिखाने पर राजी हैं। वे तो केदार को भी दिखाना चाहते हैं। केदार के एक दोस्त से यह बात कह दी गई है। अब शादी में कोई मीन-मेख नहीं है।"

वसुन्धरा की माता ने केदार की माता के पास यह शुभ सन्देश भेज दिया। फाल्गुन चढ़ते ही शादी की तैयारियाँ होने लगीं। विभु बाबू ने उमङ्ग से खूब खर्च भी किया।

केदार की माता भी पटने बुलाई गई। बड़ी धूमधाम से पटने ही में शादी हुई। मुंशी देवीनन्दन और विभु बाबू की

राय थी कि एम० ए० पास कर लेने के बाद केदार का गौना हो। मगर माता की लालसा ने पिता की राय को कायम न रहने दिया! विभु बाबू की स्त्री ने भी बड़ा जोर लगाया। बीबियों के आगे बाबुओं को झुक जाना पड़ा!

३

गौना हुआ। बहू आई। वसुन्धरा की माता के हौसले के सामने केदार की माता का हौसला संकोच में पड़ गया। बेटे पतोहू को दूर ही से देखकर अपनी आँखें ठंढी कर लेती; क्योंकि वसुन्धरा और उसकी माता प्रायः बहू को घेरे ही रहतीं। वसुन्धरा तो एक क्षण भी उससे अलग न होती।

विभु बाबू के कुटुम्ब-भर की स्त्रियों के लिये केदार की बहू दिलचस्पी का सामान बन गई। बेचारी एक साधारण देहाती गृहस्थ की लड़की, पान बनाना नहीं जानती, सिंगार-पटार करने में उतनी भी निपुण नहीं जितनी वसुन्धरा—बिलकुल भोली-भाली, शहरी शिगूफे छोड़ना नहीं जानती—वसुन्धरा चुटकियाँ लिया करती, वह सिर्फ मुस्कुराकर रह जाती। एक अल्हड़ देहाती लड़की एकाएक आकर बड़े-बड़े अमीरों की लड़कियों के जम-घट में पड़ गई—बेचारी न घबराय तो करे क्या?

जब कभी उसका जी उचट जाता, सिसक-सिसककर रोने लगती! वह घर में रोती और आँगन में वसुन्धरा तथा अन्यान्य स्त्रियाँ हँसा करतीं—मखौल करती। केदार की माँ इस विनोद पर मन-ही-मन प्रसन्न होती। वसुन्धरा की माता हँसते-हँसते

झुँझला उठती और पास जाकर बहू को पुचकारकर समझाती। कभी-कभी तो वह वसुन्धरा पर बहू को चिढ़ाने के कारण बहुत बिगड़ती; मगर उसे तो बहू को छेड़ने में ही मजा आता था।

४

इसी प्रकार कुछ दिनों के बाद केदार की बहू सबसे हिल-मिल गई। वह भी सबकी चुटकियों का कस-कसकर जवाब देने लगी। देहातीपन जाता रहा, शहराती ढंग नस-नस में पैठ गया। पान बनाने लगी। फैशन का नशा रंग लाने लगा। ज़बान भी चुस्त-दुरुस्त हो गई। नफासत और नज़ाकत में कोई कसर न रह गई। बोदापन मुरझा गया, चुलबुलाहट खिल उठी।

वसुन्धरा से उसकी इतनी घनिष्ठता हो गई कि दोनों ने एक-दूसरी का नाम लेकर पुकारना शुरू किया। केदार की बहू का नाम था 'रामप्यारी'। उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। डील-डौल और गठन वसुंधरा से कहीं अच्छी थी। स्वस्थ शरीर में युवावस्था की छटा ही कुछ और होती है। अंगूर के गुच्छे में रस की, विमल-सलिला गंगा के अतल हृदय पर शरदेन्दु-बिम्ब की और वसन्तऋतु में नूतन रसाल की जो शोभा होती है, स्वस्थ शरीर में युवावस्था की—युवावस्था में सौन्दर्य्य की—प्रायः वही शोभा देखी जाती है।

वसुन्धरा का सौन्दर्य्य कमल-दल पर पड़े हुए विमल चंचल जल-बिन्दु के समान था, और रामप्यारी का सौन्दर्य्य सुपुष्ट यौवन के स्वच्छ दर्पण में झलकती हुई दीप-शिखा के समान प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित था। वसुन्धरा का सौन्दर्य्य केवल सुकुमारता की

गोद में पला था, रामप्यारी का सौन्दर्य्य सस्यशालिनी प्रकृति-देवी के हरे-भरे अंचल-तले विकसित हुआ था। वसुन्धरा का हृदय नगर के चाकचिक्य और कोलाहल में पला था, रामप्यारी का हृदय देहात की एकान्त खुली हवा के शीतल झकोरे में। वसुंधरा की देह मखमल के गदेलों पर पली थी, और रामप्यारी की देह गाँव की गलियों की स्वर्ण-धूलि में। एक मोटर पर चढ़कर बायस्कोप देख आई थी, दूसरी बैल-गाड़ी पर एक बार गंगा नहाने जाकर रामलीला देख आई थी! दोनों दो साँचे की ढली थीं; पर प्रेम की आग ने दोनों के हृदय को गलाकर एक साँचे में ढाल दिया! किन्तु रामप्यारी के प्रेम में किसी प्रकार की वासना नहीं थी—वह अबोध बच्चे की हँसी की तरह पवित्र और कोमल था; पर वसुन्धरा के प्रेम में एक तीव्र लालसा थी—उसमें एक धनाढ्य घराने की लाड़ली लड़की के नागरिक जीवन का परिणाम प्रतिबिम्बित था।

५

कभी-कभी वसुन्धरा की माँ केदार की माता से कहा करती—"केदार की दुलहिन की जैसी भरी देह है, मेरे घर में वैसी किसी की नहीं है। मेरे पचकौड़ी की ऐसी नीरोग बहू आती, तो मैं गली-गली के पत्थर पूजती-फिरती। वसुन्धरा भी जिसके घर मे जायगी, उसका घर डाक्टर का दवाखाना बन जायगा। दुलहिन के साथ रहने से वसुन्धरा प्रसन्न रहती है, मन-बहलाव का मसाला मिल गया है न, इसलिये आजकल सिर-दर्द और

पेचिश की शिकायत नहीं सुनी जाती। आज से कुछ ही दिन पहले मेरा घर अस्पताल बना रहता था।"

रामप्यारी पास ही के घर में बैठी हुई थी। वसुन्धरा की माता का कथन सुनकर खिलखिला पड़ी। झट वसुन्धरा ने घर में जाकर त्योरी चढ़ाते हुए कुछ मुस्कुराकर और कुछ झुँझलाकर कहा—"हँसती क्या हो? मैं भी सयानी होने पर तुम्हारी ही तरह मोटी-ताजी और हट्टी-कट्टी हो जाऊँगी।"

रामप्यारी—"क्या अभी सयानी नहीं हुई हो? बीस बरस तक ब्याह न होगा, तो क्या तुम बच्ची ही बनी रहोगी?"

वसुन्धरा—"और क्या, जबतक ब्याह नहीं होता, तब-तक सयानी होने पर भी मैं बच्ची ही कहलाऊँगी।"

रा०—"कहलाने से क्या होगा? आजकल के जमाने के मुताबिक तुम्हारी तो एक लड़के की उमर बीत गई।"

व०—"खैर, तुम्हारी तो न बीतने पाई? पहले तो तुम सौ बार बुलाने पर एक बार बोलती थी और दिन-रात हाथ-भर का घूँघट काढ़े बैठी रहती थीं; मगर अब तो तुम खूब उड़ने लगीं। शहर की हवा लग गई?"

रा०—"घबराओ मत। तुम भी एक दिन लाख बार बुलाने पर एक बार बोलोगी और ऐसा लम्बा घूँघट काढ़े बैठी रहोगी कि घूँघट उठानेवाला भी अधीर हो जायगा।"

व०—"वाह! तुमको तो 'मास्टर-साहब' ने पंडित बना दिया। अच्छा, आज ही पचकौड़ी से कहूँगी कि मास्टर-साहब को अपनी गुरुआनी की पंडिताई सुना दे।"

रा०—"क्या करोगे सुनकर ? तुम्हारे मास्टर-साहब की मैं परवा नहीं रखती।"

व०—"अहा ! कब से ? चुप भी रहो। बड़ी तपस्या से 'मास्टर-साहब' मिले हैं; अपना अहोभाग्य समझो। हजारों रुपये तिलक-दहेज देकर भी कोई उनके ऐसा जमाई नहीं पा सकता, तुम्हारे बाप ने तो कौड़ी के मोल हीरा खरीद लिया—सिर्फ पान-पुङ्गीफल और भर-पत्तल भात देकर मुंशीजी को ठग लिया।"

रा०—"कैसे ठग लिया ? क्या तुम्हारे मास्टर-साहब मुझसे अधिक सुन्दर हैं ?"

व०—"रहने भी दो, कहाँ तुम, कहाँ मास्टर-साहब ! आकाश-पाताल का अन्तर है। उन्हे देखने पर जी करता है कि देखती ही रह जाऊँ।"

रा०—"जब वे तुम्हें इतने पसन्द हैं ही, तब क्यों तुम्हारे ब्याह के लिये बरसों से दौड़-धूप हो रही है ? मेरे मा-बाप तो गरीब हैं, इसलिये हीरे का पूरा दाम न दे सके; तुम्हारे मा-बाप तो हीरा देकर हीरे को खरीद सकते थे, बल्कि वे चाहते तो सेंतमेंत में पा जाते। फिर क्यों घर की ऐसी अनमोल चीज बाहर फेंकी गई ?"

व०—"तुम कैसी बातें करती हो ? मेरी पसंद का मूल्य ही क्या है ? और फिर भाग्य तो तुम्हारा चर्राया हुआ था, मुझे कैसे मिलते ? सबसे बड़ी अड़चन तो यह है कि मुंशीजी मेरे यहाँ नौकर हैं, नौकर के लड़के की शादी मालिक की लड़क

से कैसे हो सकती है ? फिर वे लड़कपन से ही मेरे घर रहते भी तो हैं।"

रा०—"यह तो और अच्छा था। देखी-भाली चीज थी। प्रेम में छोटाई-बड़ाई कैसी ?"

वसुन्धरा झुँझला उठी। ठिनककर बोली—"मैं कहे देती हूँ, अच्छा न होगा, मेरे साथ दिल्लगी न करो। मेरे मन का भेद लेने चली हो ?"

रामप्यारी हँसती हुई बोली—"अब झुँझलाने से क्या होगा ? भेद जो लेना था सो तो ले चुकी। छिपाने से भी कहीं ऐसा भेद छिपता है ? प्रेम का भेद तो छप्पर पर चढ़कर चिल्लाता है।"

६

वसुन्धरा उदास होकर कमरे से बाहर चली गई। छत पर एकान्त कमरे में लेटकर सोचने लगी—"मुझे आज कुत्ता काट गया कि इससे बहस करने गई ? यदि जानती कि वह भेद ले रही है, तो बात ही न उठाती। अब अगर कभी बात भी छिड़ेगी तो पलट दूँगी। जो बात अब कभी हो ही नहीं सकती, उसके लिये हाय-हाय करना बेकार है। ब्याह की बात अपने बस की नहीं है। माता-पिता जो चाहेंगे, वही होगा। माता-पिता की पसन्द और इच्छा के सामने मेरी पसन्द और इच्छा का कोई मूल्य नहीं हो सकता। इस बारे मे मेरी सलाह भी कौन पूछेगा ? मैं हूँ क्या चीज ? असल तो नसीब है। उसी पर रहना मेरा धर्म है।"

सोचते-सोचते वसुन्धरा बेसुध-सी हो गई। थोड़ी देर के बाद वह लम्बी साँस खींचकर उठी। देखा, आसमान बिलकुल साफ है, दिशाओं में सन्नाटा छा रहा है, पेड़ झूम रहे हैं, गंगा हिलोरे मार रही है, लहरें उठ-उठकर गिर जाती हैं। सोचा, खिड़कियाँ बन्द कर दूँ, प्रकृति की यह शोभा देखी नहीं जाती!

इतने जोर की हवा उठी कि धड़ाके से आप-ही-आप खिड़कियाँ बन्द हो गईं। दीवार पर लटके हुए चित्र हिल गये। एक चित्र टूटकर जमीन पर गिर पड़ा। शीशा चकनाचूर हो गया। झन्न-से आवाज हुई। चमकीले टुकड़े चारों ओर बिखर गये। वसुन्धरा चौंक पड़ी। फौरन् चित्र उठाकर देखा। बड़े गौर से देखा। आँखें गड़ाकर देखते-देखते चेहरा सुर्ख हो आया। एक बार ज्वालामयी आँखों से चित्र की ओर देखते हुए दाँत पीसकर उसे फर्श पर पटक दिया।

उस चित्र में वसुन्धरा, केदार और पचकौड़ी बाबू एक साथ बैठे थे। जिस समय केदार मैट्रिक पास कर कालेज में भर्ती हुआ था—पचकौड़ी बाबू का शिक्षक तथा निरीक्षक नियुक्त हुआ था, उसी समय का फोटो था।

किन्तु एक फोटो की ओर से दृष्टि फेरने के बाद ही दूसरे फोटो पर दृष्टि जा पड़ी। उसमें भी विभू बाबू के साथ केदार और पचकौड़ी! अब जिधर देखती, उधर ही केदार नज़र आता। दावानल की ज्वालाओं से घिरी हुई कातर मृगी की तरह छटपटाने लगी। न रहा गया। कल न पड़ी। नीचे उतर आई। माता के कमरे में गई। वहाँ भी केदार के कई फोटो! बाहर के बरामदे मे भी वही हाल! अब कहाँ जाय?

फिर छत पर चली गई। एक खुले बरामदे में शीतलपाटी बिछी थी। उसी पर पड़ गई। उसे मालूम हुआ, मानों देह का रक्त सूख गया, सिर घूम रहा है, आँखों के सामने रंगीन प्रकाश को बारीक लकीरें खिंचती चली जा रही हैं, तालू सूख रहा है, आसमान चक्कर काट रहा है, छत काँप रही है!

कुछ देर तक उसी तरह पड़ी रही। फिर लगी सोचने—तर्क-वितर्क करने—"जितने फोटो हैं, सबको फाड़कर फेंक दूँ—जला दूँ; मगर उसमें पचकौड़ी भी तो है। रामप्यारी अगर मेरे घर से चली जाय, तो उसका सौभाग्य देखकर जो कुढ़न पैदा होती है, वह न हो। अच्छा हो यदि पचकौड़ी अब किसी दूसरे मास्टर से पढ़े। कंटक ही दूर हो जाय। पचकौड़ी से आज रात को सलाह करूँ और उसके मन मे यह अच्छी तरह जँचा दूँ कि घरूमास्टर की पढ़ाई अच्छी नहीं होती। मगर, यह मैं क्या सोच रही हूँ? क्या ऐसा कभी हो सकता है? मुंशीजी की नेकी मेरे माता-पिता कभी भूल सकते हैं? यहाँ से रामप्यारी को जाते देख क्या मेरा यह भाव स्थिर रह सकेगा? छिः! मैं किस विडम्बना में पड़ी हूँ! इतना पढ़कर मैंने क्या किया, हृदय मलिन ही रह गया! तुच्छ वासना के एक साधारण झकोरे ने सारी शिक्षा पर पानी फेर दिया! क्या मेरा मन इतना दुर्बल हो गया? मैं इतनी गिर गई? राम-राम! आज जिसे देखकर आँखें ठंढी कर लेती हूँ, उसे ही सदा के लिये आँखों को ओट कर क्या मैं शान्ति पा जाऊँगी? जब मैं दूसरे का सौभाग्य देखकर जलती हूँ, तब भला अपने भाग्य पर क्यों न रोना पड़े?"

७

बस, तूफान निकल गया, बढ़िया बह गई, हृदय का हाहा-कार मिट गया। अपने एकान्त कमरे में चली गई। शीशे के टुकड़ों को एक-एककर चुन डाला। फर्श पर पड़ा हुआ फोटो उठाकर बड़े आदर से टेबिल के सामने के रुख में रक्खा। कलम-दावात लेकर चिट्ठी लिखने बैठ गई।

हाथ मे 'लेटर-पेपर का पैड' लेते ही ओठों पर मधुर मुस्कान की रेखा खिच गई। लिखा—

"केदार—

तुम मेरे लड़कपन के साथी हो। मुझे वे दिन याद हैं—तुम्हारे साथ पढ़ती थी, खाती थी, खेलती थी, टहलने जाती थी, तमाशे मे जाती थी। कोई भेद न था। आज भेद प्रत्यक्ष है। मैं तुम्हें रोज देखती हूँ, तुम भी मुझे रोज देखते हो; मगर पहले की तरह हम दोनों में अब स्वच्छन्द बातचीत नही होती। मेरे माता-पिता तुमपर पूर्ण विश्वास करते हैं। पर तुम डरते हो, मैं केवल संकोच करती हूँ। यह हम दोनों के दिल की कम-जोरी है। इससे साबित होता है कि हम दोनों का हृदय अशुद्ध है। मैं अपने हृदय का विश्वास करती हूँ। तुम भी अपने हृदय का विश्वास करो। दिखाऊ बन्धन तोड़कर हमलोग अपनी पहली स्वच्छन्दता को अपनावें और इस बनावटी लोकाचार को धता बतावें।

तुम्हारी—"वसु"

एक दासी-द्वारा वसुन्धरा का पत्र पाकर केदार चौंका। मगर खोलकर पढ़ने पर अनायास हँस पड़ा। उसी दम जवाब लिखकर भेजा—

"वसु—

तुम्हारी बातों से तुम्हारी सरलता टपक रही है। अपनेको सँभालो। लोकाचार का अनादर करने से कोई लाभ न होगा। अब कोई ऐसा प्रसंग या विषय ही नहीं रह गया, जिसपर तुम मुझसे या मैं तुमसे बातें करूँ। मैं ईश्वर के सिवा किसी से नहीं डरता;—केवल समाज की मर्यादा बचाये रखने के लिये ही अपनी स्वच्छन्दता से काम नहीं लेता। तुम्हे भी ऐसा ही करना चाहिये। अपनी वर्त्तमान अवस्था में यदि तुम्हे अपने हृदय का विश्वास है, तो तुमसे कहीं अधिक मुझे अपने हृदय का विश्वास है। दिखाऊ बन्धन का कारण हृदय की अशुद्धता मत समझो। यह दिखाऊ बन्धन ही हृदय को शुद्ध रखने का साधन है और बन्धन को बनावटी भी न समझो। यह परम्परा की रीति है। दर-असल यह बन्धन नहीं, बन्धन से बचने का उपाय है। अगर तुम्हे मुझसे कुछ बोलने की इच्छा होती है, तो सबके सामने खुलासगी के साथ बोला करो, मैं बोलूँगा; मगर तुम्हारी बातों का जवाब उसी भाव से दूँगा, जिस भाव से पचकौड़ी की बातों का दिया करता हूँ। —के०"

८

वसुन्धरा के पास पत्र भेजकर केदार सोचने लगा—"बड़ा भारी अनर्थ हुआ चाहता है। वसु का चित्त चंचल होने

लगा। वह मुझसे बातचीत करने की स्वच्छन्दता चाहती है। इससे साफ जाहिर होता है कि पुरुष से खुल्लम-खुल्ला बातें करने में उसे दिलचस्पी मालूम होती है। अनेक अंशों में यह बिलकुल स्वाभाविक है। वह सयानी हो गई। धनाढ्य घराने की लड़की ठहरी। खान-पान, ठाट-बाट, चाल-ढाल, रहन-सहन—सब कुछ अमीराना ही ठहरा। लेकिन खाली अमीरी का ही कसूर नहीं है, बहुत-कुछ कसूर समाज का भी है। इतने बड़े घराने की लड़की इतनी उम्र तक क्वाँरी क्यों रही? साठ-सत्तर हजार की रियासत के मालिक होकर भी विभु बाबू अगर दस हजार तिलक और पाँच हजार दहेज नहीं दे सकते, तो इस पतित समाज में इन्हें रहना ही न चाहिये। इसमें रहने पर तो इतना दंड देना ही पड़ेगा। कितने लोग तो अपना सर्वस्व बेचकर इस अत्याचारी समाज का टैक्स चुकाते हैं। उनके तो यही एक लड़की है। अगर बीस-पचीस हज़ार खर्च ही कर देंगे, तो इनका क्या बिगड़ जायगा? रियासत पर कर्ज नहीं है, कुछ रुपये भी जमा हैं, खर्च कम है, बचत बहुत है, मन्दिर का खर्च एक हज़ार मासिक है, दान-खाते में हर साल लगभग चार हज़ार रुपये खर्च होते हैं; मगर सब बेकार है—मालूम नहीं, घर मे युवती क्वाँरी कन्या देखते हुए भी इन्हें कैसे मन्दिर और खैरात में इतना खर्च करना सुहाता है। या तो समाज का बन्धन तोड़ दें, या उसके शासन के सामने सिर झुकावें। दो में एक होना चाहिये। मैं ही खुद इनसे क्यों न कहूँ कि इस साल आषाढ़ के अन्त तक भी वसु का विवाह कर डालें? अगर वर ढूँढ़ने के लिये कहेंगे, तो मैं कालेज का लेक्चर छोड़कर एक महीने

के अन्दर शादी ठीक कर दूँगा ! अहा ! बड़े मौके से बात याद आई। चन्द्रज्योति मेरे साथ बी० ए० में पहले साल पढ़ता था। कहीं के सरकारी वकील का लड़का था। शायद जमींदार भी था। तभी तो इतनी शान-शौकत से ठाटदार बँगले मे रहता था। सब लड़के उसे शाहजादा-साहब कहा करते थे। रूप-रंग का तो कहना ही क्या, होनहार भी था। खासे वलायती अँगरेज की तरह धड़ल्ले से अँगरेजी बोलता था। मगर आजकल कहाँ पढ़ता है, कुछ पता नहीं। अच्छा, कल कालेज के क्लर्क से पुराना रजिस्टर माँगकर उसका पता देखूँगा। सम्भव है, किसी लड़के को भी उसका पता मालूम हो। निरञ्जन उसके साथ बहुत रहता था। उसीसे चलकर क्यो न पूछूँ ? अब जैसे भी हो सके, वसु का विवाह इस साल कराकर ही छोड़ूँगा। जब-तक उसका विवाह नहीं हो जाता, तबतक अपनी पत्नी के पास ज़नाना मकान में न जाऊँगा। जिस मकान में एक ही उम्र की दो स्त्रियाँ हैं—जब एक सांसारिक सुख-भोग में लिप्त रहती है, तब दूसरी क्यों न उसका स्वप्न देखे ? अपनी पत्नी को भी एक पत्र लिखकर समझा दूँ कि वह मेंहँदी लगाना, पान खाना, रंग-बिरंग कपड़े बदलना, इत्र लगाना और वसु से मेरी चर्चा करना बिलकुल छोड़ दे। उसे अपने न मिलने का कारण भी बता दूँ, ताकि वसु से उसका मनमुटाव न हो।"

बड़ी देर तक केदार इसी सोच में डूबा रहा। सोचते-ही-सोचते उठा और साइकिल पर कहीं बाहर निकल गया। पहले कालेज के क्लर्क के पास गया। क्लर्क घर पर न मिला। तब गया निरञ्जन के पास। वह बैठा पढ़ रहा था। उससे चन्द्र-

ज्योति का पता पूछा। निरञ्जन ने बताया—"आजकल वही काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में पढ़ रहा है; अभी हाल में उसकी चिट्ठी आई थी।"

केदार ने इसी प्रसङ्ग में पूछा—"उसकी शादी अभी हुई कि नहीं?"

निरंजन ठठाकर हँसा और केदार के कन्धे पर हाथ पटकते हुए कहा—"तुम भी कैसी अचम्भे की बातें करने लगे, शादी होती तो वह हमलोगों को निमंत्रण न देता?"

केदार मुँह बिचकाकर बोला—"एक चिट्ठी तो कभी लिखता ही नहीं, खाक निमन्त्रण देगा। बड़े आदमी का लड़का है, घमंडी!"

निरंजन—"हरगिज नहीं, तुम उसकी सङ्गति में कभी पड़ते तो देखते कि वह कैसा मिलनसार, खुशदिल, मिठबोलिया और दोस्तपरस्त था। बुलन्दशहर के सरकारी वकील का लड़का था तो क्या, घमंड उसे छू नहीं गया था।"

केदार—"लेकिन कालेज में तो 'दोस्तपरस्त' की परिभाषा ही कुछ और है! जानते हो? मिलनसार और मिठबोलिया होकर एक खूबसूरत शौकीन लड़का कालेज में कैसा जीवन बिताता है, यह क्या तुम नहीं जानते?"

निरंजन—"खूब जानता हूँ, कालेज का वायुमंडल दुनिया-भर से निराला है; मगर यह बात नहीं है कि कालेज में सुशील लड़के होते ही नहीं। चन्द्रज्योति का चरित्र इतना पवित्र है कि कालेज के मनचले लड़के कभी उससे बोलने की हिम्मत न करते। स्वेच्छापूर्वक वह चाहे जिससे बातें कर ले; मगर

मर्जी के खिलाफ कोई उसे छेड़ नहीं सकता! मैं यहाँ उसकी वकालत नहीं करता। गर्मी की छुट्टियों में वह यहाँ आनेवाला है। शायद मुजफ्फरपुर में उसकी कोई रिश्तेदारी है। वहीं से यहाँ आवेगा। मैं तुम्हारे ही पास उसे ठहरा दूँगा। उस समय देखना कि वह वास्तव में 'सूरदास की काली कमली' है या नहीं।"

केदार अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—"हाँ भाई, मेरे ही यहाँ ठहराना, मैं उसी समय तुम्हारी बातों को कसौटी पर कस-कर देख लूँगा।"

निरंजन—"मेरी समझ में नहीं आता कि आज इतने दिनों के बाद एकाएक तुम्हें चन्द्रज्योति कैसे याद पड़ गया। रोज ही तुम आते थे; मगर कभी उसकी चर्चा नहीं होती थी। आज आते ही तुमने उसी की बात छेड़ी। आखिर माजरा क्या है?"

केदार ने स्पष्ट शब्दों में निरंजन पर अपना अभिप्राय प्रकट किया और इस विषय में पूरी सहायता देने के लिये उससे आग्रह भी किया। निरंजन ने चन्द्रज्योति के नाम से एक विनोद-भरी चिट्ठी लिख दी। केदार ने ले जाकर अपने हाथ से उस चिट्ठी को डाक में छोड़ा। फिर मन-ही-मन प्रसन्न होता विभु बाबू के पास गया। उन्हें चन्द्रज्योति का परिचय बताया। निरंजन से जो बातचीत हुई थी, उसका भी जिक्र किया।

विभु बाबू बड़े प्रसन्न हुए। केदार की पीठ सहलाते हुए बोले—"बेटा, तुम आज ही उस लड़के को एक पत्र लिखो। मैं कल सुबह की डाक से ही बुलन्दशहर के लिये पुजारीजी को रवाना करूँगा। क्या तुम्हारे कहने से निरंजन काशी जा सकता है? तुम भी उसके साथ चले जाना।"

केदार—"आप पुजारीजी को वहाँ कल भेज दीजिये। मैं आज उसे चिट्ठी लिखने जा रहा हूँ। काशी जाने की जरूरत नहीं है। गर्मी की छुट्टी एक-दो सप्ताह के बाद ही होनेवाली है। वह यहाँ आवेगा। मेरे ही साथ ठहरेगा।"

विभु बाबू तो बुलबुल हो गये। मालूम हुआ, केदार ने उनके सिर से चिन्ता की भारी गठरी उतार ली। केदार पर उनका विश्वास और प्यार चौगुना बढ़ गया।

केदार अपने कमरे में चला गया। एक पत्र चन्द्रज्योति को लिखा और एक अपनी पत्नी को। एक डाकखाने में भेज दिया, दूसरा पचकौड़ी बाबू के हाथ घर में।

रामप्यारी पत्र पढ़कर बहुत उदास हो गई। सोचने लगी—"वसुन्धरा ने उस दिन की दिल्लगी का बदला चुका लिया। केवल वही उनके रूप पर लट्टू नहीं है, वे भी उसके रूप के गाहक हैं। उसका ब्याह नहीं होता, तो मेरा क्या दोष? मैं क्यों अपना सुख छोड़ दूँ? जब क्वाँरी रहकर वह अपनेको नहीं सँभाल सकती, तब ब्याही होकर मैं कैसे वैराग्य ले लूँ? कुछ-न-कुछ दाल में काला जरूर है। मेरे पास न आने का बहाना अच्छा सोच निकाला! यह सब वसुन्धरा की सलाह से हुआ है। अच्छा, अगर मैं असल बाप की बेटी हूँ, तो आज ही इस भेद का पता लगा लूँगी। मैं नहीं जानती थी कि वसुन्धरा का रूप इतना सुन्दर और हृदय ऐसा भयंकर है। मेरे सामने मीठी-मीठी बातें करती है और पीठ-पीछे मेरी गिला करती है। अब यह कैंची की चाल कारगर न होगी। दो मे एक होगा या तो वह मेरी सौत होगी या मैं जहर खाकर सो रहूँगी।"

यह सब सोचते हुए ही वह वसुन्धरा के कमरे में छत पर चली गई। बड़ी प्रसन्नता से बातें करने लगी। हृदय में ज्वाला थी; पर मुँह से फूल झड़ने लगे—"वसु, पचकौड़ी बाबू के मास्टर-साहब आज से मेरे पास न आवेंगे। न जाने क्यों मुझसे इतनी जल्दी उनका जी ऊब गया।"

वसु०—"तुमसे किसने कहा कि अब न आवेंगे?"

रा०—"दूसरा कौन कहेगा? खुद उन्होंने ही पत्र लिखा है।"

वसु०—"कहाँ है वह पत्र? दिखाओ तो।"

रा०—"फाड़कर फेंक दिया, जी में बहुत रंज हो आया।"

वसु०—"सुहागिन स्त्री अपने पति का पत्र नहीं फाड़ सकती, तुम झूठ बोलती हो; प्यार की गालियाँ भी रसीली होती हैं।"

रा०—"अच्छा, झूठ ही बोलती हूँ, न दिखाऊँगी पत्र।"

वसु०—"मत दिखाओ, मैं भी सिफारिश न करूँगी।"

रा०—"उससे बोलती तो हो नहीं, सिफारिश कैसे करोगी!"

वसु०—"तुम्हारे सुख के लिये मैं सब कर सकती हूँ।"

रा०—"दिल से कहती हो या मनगढ़न्त?"

वसु०—"सिर्फ दिल ही से नहीं, तहे-दिल से कहती हूँ।"

रा०—"अच्छा, सिफारिश करो, काम सिद्ध होने पर पत्र दिखाऊँगी, मिठाइयाँ खिलाऊँगी।"

रामप्यारी चली गई। वसुन्धरा चिन्ता में डूब गई। सोचने लगी—"भार तो झट उठा लिया; वादा पूरा कैसे होगा? बोलूँगी कैसे? मुलाकात कब होगी? ऐसी जगह कहाँ है? पहले क्या कहूँगी? कह सकूँगी?"

९

वसुन्धरा सोचती ही रह गई। लाख हिम्मत की, मगर केदार से खुलकर बोलने या एकान्त में मिलने का साहस न हुआ। रामप्यारी रोज ही उकसाती थी, रोज ही तकाजे करती थी; मगर वसुन्धरा अपने दिल को इतना पोढ़ न बना सकी कि केदार से कुछ कह सके।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। गर्मी की छुट्टियाँ पहुँच गईं। बुलन्दशहर से पुजारीजी लौट आये। चन्द्रज्योति के आने की तारीख रोज ही पचासों उँगलियों पर गिनी जाने लगी। घर में रोज ही चर्चा होने लगी कि वसुन्धरा की शादी केदार के एक मित्र से होने जा रही है। रामप्यारी के सन्देह पर गाढ़ा रङ्ग चढ़ने लगा—वह दिन-रात असमञ्जस के हिंडोले पर झूलने लगी। निश्चित तिथि की शाम को एकाएक चन्द्रज्योति के साथ निरंजन आ पहुँचा। विभु बाबू का घर आनन्द की चहल-पहल से भर गया।

चन्द्रज्योति अगर सचमुच विभु बाबू का जमाई होता, तो भी उसका इतना आदर-सत्कार न होता। आदर-सत्कार की अतिशयता देखकर उसके मन में बड़ा कौतूहल और संकोच होने लगा। किन्तु निरंजन और केदार ने उसपर यह रहस्य प्रकट न होने दिया। मगर निरंजन की उस विनोद-भरी चिट्ठी की याद कर कभी-कभी वह बड़े संकोच में पड़ जाता और बार-बार घर जाने की उत्सुकता प्रकट करने लगता।

१०

दूसरा सप्ताह बीतते-बीतते घर से तार आया और चन्द्र-ज्योति रवाना हो गया। वहाँ जाकर देखा, शादी की तैयारियाँ हो रही हैं !

हमजोलियों ने कहना शुरू किया—"ससुराल शादी ठीक करने गये थे ! बारात घर ही पर है, दूल्हा ससुराल हो आया !"

हमजोलियों की बातों पर मन-ही-मन हँसकर चन्द्र-ज्योति ने जब पटने के मित्रों की दी हुई 'प्रेमोपहार की पेटी' खोली, तब फलों के साथ वसुन्धरा का फोटो भी देखा ! आश्चर्य और प्रसन्नता के भाव उसके चेहरे पर झलक उठे—मुस्कुराहट की एक बारीक रेखा उसके ओठों पर खिंच गई !

शादी बड़े हौसले से हुई। केदार के तो पैर ही जमीन पर न पड़ते थे ! बारात के साथ ही वसुन्धरा ससुराल के लिये घर से रुखसत हुई। केदार को मालूम हुआ कि हृदय की गाँठ से कोई मणि छूट पड़ी !

पंजाब-मेल के 'रिजर्व' डब्बे में वसुन्धरा को बिठाकर केदार 'स्टार्टर-सिगनल' की ओर देखने लगा। गाड़ी खुलते-खुलते वसुन्धरा ने उसपर एक ऐसी गम्भीर दृष्टि डाली, जिसमें कृतज्ञता और सन्तोष के अगाध भाव भरे हुए थे !

वसुन्धरा के वे अमृत-कटाक्ष आज भी केदार के हृदय-पट पर 'खोपड़ी के अक्षर' की तरह अङ्कित हैं !

☙

कहानी का प्लाट

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥

—कालिदास

× × × ×

जातेति कन्या महती हि चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्कः।
दत्ता सुखं यास्यति वा न वेति कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥

× × × ×

जगत् की नित्य की घटना नई चाहे पुरानी है।
लिखी ईश्वर की पुस्तक में बड़ी अद्भुत कहानी है॥

× × × ×

Her arms across her breast she laid;
She was more fair than words can say:
As shines the moon in clouded skies,
She is in her poor attire was seen:
One praised her ancles, one her eyes,
One her dark hair and lovesome mien.
So sweet a face, such angel grace,
In all that land had never been.

—*Tennyson.*

१

मै कहानी-लेखक नहीं हूँ। कहानी लिखने-योग्य प्रतिभा भी मुझमें नहीं है। कहानी-लेखक को स्वभावतः कला-मर्मज्ञ होना चाहिये, और मैं साधारण कलाविद् भी नहीं हूँ। किन्तु, कुशल कहानी-लेखकों के लिये एक 'प्लाट' पा गया हूँ। आशा है, इस 'प्लाट' पर वे अपनी भड़कीली इमारत खड़ी कर लेंगे।

× × × × ×

मेरे गाँव के पास एक छोटा-सा गाँव है। गाँव का नाम बड़ा गँवारू है, सुनकर आप घिनाएँगे। वहाँ एक बूढ़े मुंशीजी रहते थे—अब वे इस संसार मे नहीं हैं। उनका नाम भी विचित्र ही था—"अनमिल आखर अर्थ न जापू"—इसलिये उसे साहित्यिकों के सामने बताने से हिचकता हूँ। खैर, उनके एक पुत्री थी, जो अबतक मौजूद है। उसका नाम—जाने दीजिये, सुनकर क्या कीजियेगा? मै बताऊँगा भी नहीं! हाँ, चूँकि उसके सम्बन्ध की बातें बताने में कुछ सहूलियत होगी, इसलिये उसका एक कल्पित नाम रख लेना जरूरी है। मान लीजिये, उसका नाम है 'भगजोगनी'। देहात की घटना है, इसलिये देहाती नाम ही अच्छा होगा। खैर, आगे बढ़िये—

मुंशीजी के बड़े भाई पुलिस-दारोगा थे—उस जमाने में जब कि अँगरेजी जाननेवालों की संख्या उतनी ही थी, जितनी आज धर्मशास्त्रों के मर्म जाननेवालों की है; इसलिये उर्दूदाँ लोग ही ऊँचे-ऊँचे ओहदे पाते थे। दारोगाजी ने आठ-दस पैसे का

करीमा-खालिकबारी पढ़कर जितना रुपया कमाया था, उतना आज कालेज और अदालत की लाइब्रेरियाँ चाटकर वकील होने-वाले भी नहीं कमाते।

लेकिन दारोगाजी ने जो कुछ कमाया, अपनी जिन्दगी में ही फूँक-ताप डाला। उनके मरने के बाद सिर्फ उनकी एक घोड़ी बची थी, जो थी तो महज़ सात रुपये की; मगर कान काटती थी तुर्की घोड़ों के—कम्बख्त बारूद की पुड़िया थी! बड़े-बड़े अँगरेज-अफसर उसपर दाँत गड़ाये रह गये; मगर दारोगाजी ने सबको निबुआ-नोन चटा दिया। इसी घोड़ी की बदौलत उनकी तरक्की रुकी रह गई; लेकिन आखिरी दम तक वे अफसरों के घपले में न आये—न आये। हर तरह से काबिल, मिहनती, ईमानदार, चालाक, दिलेर और मुस्तैद आदमी होते हुए भी वे दारोगा-के-दारोगा ही रह गये—सिर्फ घोड़ी की मुहब्बत से!

किन्तु, घोड़ी ने भी उनकी इस मुहब्बत का अच्छा नतीजा दिखाया—उनके मरने के बाद खूब धूम-धाम से उनका श्राद्ध करा दिया। अगर कहीं घोड़ी को भी बेच खाये होते, तो उनके नाम पर एक ब्राह्मण भी न जीमता। एक गोरे अफसर के हाथ खासी रकम पर घोड़ी को ही बेचकर मुंशीजी अपने बड़े भाई से उऋण हुए।

दारोगाजी के ज़माने में मुंशीजी ने भी खूब घी के दीये जलाये थे। गाँजे में बढ़िया-से-बढ़िया इत्र मलकर पीते थे—चिलम कभी ठंढी नहीं होने पाती थी। एक जून बत्तीस बटेर और चौदह चपातियाँ उड़ा जाते थे! नथुनी उतारने में तो

दारोगाजी के भी बड़े भैया थे—हर साल एक नया जलवा हुआ ही करता था।

किन्तु, जब बढ़िया बह गई, तब चारों ओर उजाड़ नजर आने लगा। दारोगाजी के मरते ही सारी अमीरी घुस गई। चिलम के साथ-साथ चूल्हा-चक्की भी ठंढी हो गई। जो जीभ एक दिन बटेरों का शोरबा सुड़कती थी, वह अब सराह-सराह-कर मटर का सत्तू सरपोटने लगी। चुपड़ी चपातियाँ चाबनेवाले दाँत अब चन्द चने चबाकर दिन गुजारने लगे। लोग साफ कहने लग गये—थानेदारी की कमाई और फूस का तापना दोनों बराबर हैं।

हर साल नई नथुनी उतारनेवाले मुंशीजी को गाँव-जवार के लोग भी अपनी नजरों से उतारने लगे। जो मुंशीजी चुल्लू-के-चुल्लू इत्र लेकर अपनी पोशाकों में मला करते थे, उन्हीं को अब अपनी रूखी-सूखी देह में लगाने के लिये चुल्लू-भर कड़वा तेल मिलना भी मुहाल हो गया। शायद किस्मत की फटी चादर का कोई रफूगर नहीं है!

लेकिन, ज़रा किस्मत की दोहरी मार तो देखिये। दारोगाजी के ज़माने में मुंशीजी के चार-पाँच लड़के हुए; पर सब-के-सब सुबह के चिराग हो गये। जब बेचारे को पाँचों उँगलियाँ घी में थीं, तब तो कोई खानेवाला न रहा, और जब दोनों टाँगें दरिद्रता के दलदल में आ फँसीं और ऊपर से बुढ़ापा भी कन्धे दबाने लगा, तब कोढ़ में खाज की तरह एक लड़की पैदा हो गई! और तारीफ यह कि मुंशीजी की बदकिस्मती भी दारोगाजी की घोड़ी से कुछ कम स्यावर नहीं थी!

सच पूछिये तो इस तिलक-दहेज के ज़माने में लड़की पैदा करना ही बड़ी भारी मूर्खता है। किन्तु युगधर्म की क्या दवा है ? इस युग में अबला ही प्रबला हो रही है। पुरुष-दल को स्त्रीत्व खदेड़े जा रहा है। बेचारे मुंशीजी का क्या दोष ? जब घी और गरम मसाले उड़ाते थे, तब तो हमेशा लड़का ही पैदा करते रहे; मगर अब मटर के सत्तू पर बेचारे कहाँ से लड़का निकाल लायें ! सचमुच अमीरी की क़ब्र पर पनपी हुई ग़रीबी बड़ी ही ज़हरीली होती है !

२

भगजोगनी चूँकि मुंशीजी की गरीबी में पैदा हुई और जन्मते ही माँ के दूध से वंचित होकर 'टूअर' कहलाने लगी, इसलिये अभागिन तो अजहद थी, इसमें शक नहीं; पर सुन्दरता में वह अँधेरे घर का दीपक थी। आजकल वैसी सुघर लड़की किसी ने कभी कहीं न देखी !

अभाग्यवश मैंने उसे देखा था ! जिस दिन पहले-पहल उसे देखा, वह करीब ग्यारह-बारह वर्ष की थी। पर एक ओर उसकी अनूठी सुघराई और दूसरी ओर उसकी दर्दनाक गरीबी देखकर, सच कहता हूँ, कलेजा काँप गया। यदि कोई भावुक कहानी-लेखक या सहृदय कवि उसे देख लेता, तो उसकी लेखनी से अनायास करुणा की धारा फूट निकलती। किन्तु मेरी लेखनी में इतना जोर नहीं है कि उसकी गरीबी के भयावने चित्र को मेरे हृदय-पट से उतारकर 'सरोज' के इस कोमल 'दल' पर रक्खे। और, सच्ची घटना होने के कारण, केवल प्रभावशाली बनाने के लिये, मुझसे भड़कीली भाषा में लिखते भी

नहीं बनता। भाषा में गरीबी को ठीक-ठीक चित्रित करने की शक्ति नहीं होती, भले ही वह राजमहलों की ऐश्वर्य्य-लीला और विशाल वैभव के वर्णन करने मे समर्थ हो !

आह ! बेचारी उस उम्र में भी कमर में सिर्फ एक पतला-सा चिथड़ा लपेटे हुई थी, जो मुश्किल से उसकी लज्जा ढँकने में समर्थ था। उसके सिर के बाल तेल बिना बुरी तरह बिखरकर बड़े डरावने हो गये थे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में एक अजीब ढंग की करुण-कातर चितवन थी। दरिद्रता-राक्षसी ने सुन्दरता-सुकुमारी का गला टीप दिया था !

कहते हैं, प्रकृत सुन्दरता के लिये कृत्रिम शृंगार की जरूरत नहीं होती; क्योंकि जंगल में पेड़ की छाल और फूल-पत्तियों से सजकर शकुन्तला जैसी सुन्दरी मालूम होती थी, वैसी दुष्यन्त के राजमहल में सोलहो सिंगार करके भी वह कभी न फबी। किन्तु शकुन्तला तो चिन्ता और कष्ट के वायुमंडल में नहीं पली थी। उसके कानों में उदर-दैत्य का कर्कश हाहाकार कभी न गूँजा था। वह शान्ति और सन्तोष की गोद में पलकर सयानी हुई थी, और तभी उसके लिये महाकवि की 'शैवाल-जाल लिप्त कमलिनी' वाली उपमा उपयुक्त हो सकी। पर 'भगजोगनी' तो गरीबी की चक्की में पिसी हुई थी, भला उसका सौन्दर्य्य कब खिल सकता था ! वह तो दाने-दाने को तरसती रहती थी, एक बित्ता कपड़े के लिये भी मुहताज थी। सिर में लगाने के लिये एक चुल्लू अलसी का तेल भी सपना हो रहा था। महीने के एक दिन भी भर-पेट अन्न के लाले पड़े थे। भला, हड्डियों के खँडहर में सौन्दर्य-देवता कैसे टिके रहते !

३

उफ़ ! उस दिन मुंशीजी जब रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाने लगे, तब कलेजा टूक-टूक हो गया। कहने लगे—

"क्या कहूँ बाबू साहब, पिछले दिन जब याद आते हैं, तब गश आ जाता है। यह गरीबी की तीखी मार इस लड़की की वजह से और भी अखरती है। देखिये, इसके सिर के बाल कैसे खुश्क और गोरखधन्धारी हो रहे हैं। घर में इसकी माँ होती, तो कम-से-कम इसका सिर तो जूँओं का अड्डा न होता। मेरी आँखों की जोत अब ऐसी मन्द पड़ गई कि जूँएँ सूझतीं नहीं। और, तेल तो एक बूँद भी मयस्सर नहीं। अगर अपने घर में तेल होता, तो दूसरे के घर जाकर भी कंघी-चोटी करा लेती, सिर पर चिड़ियों का घोंसला तो न बनता? आप तो जानते हैं, यह छोटा-सा गाँव है, कभी साल-छमासे में किसी के घर बच्चा पैदा होता है, तो इसके रूखे-सूखे बालों के नसीब जगते हैं!"

"गाँव के लड़के, अपने-अपने घर भर पेट खाकर, जब झोलियों में चबेना लेकर खाते हुए घर से निकलते हैं, तब यह उनकी बाट जोहती रहती है—उनके पीछे-पीछे लगी फिरती है, तो भी मुश्किल से दिन में एक-दो मुट्ठी चबेना मिल पाता है। खाने-पीने के समय किसी के घर पहुँच जाती है, तो इसकी डीठ लग जाने के भय से घर-वालियाँ दुरदुराने लगती हैं! कहाँतक अपनी मुसीबतों का बयान करूँ, भाई साहब, किसी की दी हुई मुट्ठी-भर भीख लेने के लिये इसके तन पर फटा आँचल भी तो नहीं है! इसकी छोटी अँजुलियों में ही जो कुछ अँट जाता है,

उसीसे किसी तरह पेट की जलन बुझा लेती है! कभी-कभी एक-आध फंका चना-चबेना मेरे लिये भी लेती आती है; उस समय हृदय दोटूक हो जाता है।"

"किसी दिन, दिन-भर घर-घर घूमकर जब शाम को मेरे पास आकर धीमी आवाज से कहती है कि बाबूजी, भूख लगी है—कुछ हो तो खाने को दो; उस वक्त, आपसे ईमानन कहता हूँ, जी चाहता है कि गल-फाँसी लगाकर मर जाऊँ या किसी कुँए-तालाब में डूब मरूँ। मगर फिर सोचता हूँ कि मेरे सिवा इसकी खोज-खबर लेनेवाला इस दुनिया में अब है ही कौन! आज अगर इसकी माँ भी जिन्दा होती, तो कूट-पीसकर इसके लिये मुट्ठी-भर चून जुटाती—किसी क़दर इसकी परवरिश कर ही ले जाती, और अगर कहीं आज मेरे बड़े भाई साहब बर-करार होते, तो गुलाब के फूल-सी ऐसी लड़की को हथेली का फूल बनाये रहते। जरूर ही किसी 'रायबहादुर' के घर में इसकी शादी करते। मै भी उनकी अन्धाधुन्ध कमाई पर ऐसी बेफिक्री से दिन गुजारता था कि आगे आनेवाले इन बुरे दिनों की मुत-लक खबर न थी। वे भी ऐसे खर्चीच थे कि अपने कफन-काठी के लिये भी एक खरमुहरा न छोड़ गये—अपनी जिन्दगी में ही एक-एक चप्पा जमीन बेच खाई—गाँव-भर से ऐसी अदा-वत बढ़ाई कि आज मेरी इस दुर्गत पर भी कोई रहम करनेवाला नहीं है, उलटे सब लोग तानेजना के तीर बरसाते हैं। एक दिन वह था कि भाई साहब के पेशाब से चिराग जलता था, और एक दिन यह भी है कि मेरी हड्डियाँ मुफलिसी की आँच से मोम-बत्तियों की तरह घुल-घुलकर जल रही हैं।"

"इस लड़की के लिये आसपास के सभी जवारी भाइयों के यहाँ मैंने पचासों फेरे लगाये, दाँत दिखाये, हाथ जोड़कर विनती की, पैरों पड़ा—यहाँ तक बेहया होकर कह डाला कि बड़े-बड़े वकीलों, डिप्टियों और ज़मींदारों की चुनी-चुनाई लड़कियों में मेरी लड़की को खड़ी करके देख लीजिये कि सबसे सुन्दर जँचती है या नहीं, अगर इसके जोड़ की एक भी लड़की कहीं निकल आये तो इससे अपने लड़के की शादी मत कीजिये। किन्तु मेरे लाख गिड़गिड़ाने पर भी किसी भाई का दिल न पिघला। कोई यह कहकर टाल देता कि लड़के की माँ ऐसे घराने में शादी करने से इनकार करती है, जिसमें न सास है न साला और न बारात की खातिरदारी करने की हैसियत। कोई कहता कि गरीब-घर की लड़की चटोर और कंजूस होती है, हमारा खान्दान बिगड़ जायगा। ज्यादातर लोग यही कहते मिले कि हमारे लड़के को इतना तिलक-दहेज मिल रहा है, तो भी हम शादी नहीं कर रहे हैं; फिर विना तिलक-दहेज के तो बात भी करना नहीं चाहते। इसी तरह, जितने मुँह उतनी ही बातें सुनने मे आईं। दिनों का फेर ऐसा है कि जिसका मुँह न देखना चाहिये, उसका भी पिछाड़ देखना पड़ा।"

"महज़ मामूली हैसियतवालों को भी पाँच सौ और एक हजार तिलक-दहेज फरमाते देखकर जी कुढ़ जाता है—गुस्सा चढ़ आता है; मगर गरीबी ने तो ऐसा पंख तोड़ दिया है कि तड़फड़ा भी नहीं सकता। साले हिन्दू-समाज के कायदे भी अजीब ढंग के हैं। जो लोग मोल-भाव करके लड़के की बिक्री करते हैं, वे भले आदमी समझे जाते हैं; और कोई गरीब बेचारा

उसी तरह मोल-भाव करके लड़की को बेचता है तो वह कमीना कहा जाता है! मैं अगर आज इसे बेचना चाहता तो इतनी काफी रकम ऐंठ सकता था कि कम-से-कम मेरी जिन्दगी तो जरूर ही आराम से कट जाती। लेकिन जीते-जी हरगिज एक मक्खी भी न लूँगा। चाहे यह क्वाँरी रहे या सयानी होकर मेरा नाम हँसाये। देखिये न, सयानी तो करीब-करीब हो ही गई है—सिर्फ पेट की मार से उकसने नहीं पाती, बढ़न्ती रुकी हुई है। अगर किसी खुशहाल घर में होती, तो अबतक फूट-कर सयानी हो जाती—बदन भरने से ही खूबसूरती पर भी रोग़न चढ़ता है, और बेटी की बाढ़ बेटे से जल्दी होती भी है।"

"अब अधिक क्या कहूँ, बाबू साहब, अपनी ही करनी का नतीजा भोग रहा हूँ। मोतियाबिन्द, गठिया और दमा ने निकम्मा कर छोड़ा है। अब मेरे पछतावे के आँसुओं में भी ईश्वर को पिघलाने का दम नहीं है। अगर सच पूछिये, तो इस वक्त सिर्फ एक ही उम्मीद पर जान अटकी हुई है—एक साहब ने बहुत कहने-सुनने से इसके साथ शादी करने का वादा किया है। देखना है कि गाँव के खोटे लोग उन्हें भी भड़काते हैं या मेरी झाँझरी नैया को पार लगने देते हैं। लड़के की उम्र कुछ कड़ी जरूर है—इकतालिस-बयालिस साल की; मगर अब इसके सिवा कोई चारा भी नहीं है। छाती पर पत्थर रखकर अपनी इस राज-कोकिला को...................।"

इसके बाद मुंशीजी का गला रुँध गया—बहुत बिलखकर रो उठे और भगजोगनी को अपनी गोद में बैठाकर फूट-फूट रोने लग गये। अनेक प्रयत्न करके भी मैं किसी प्रकार उनको

आश्वासन न दे सका। जिसके पीछे हाथ धोकर वाम-विधाता पड़ जाता है, उसे तसल्ली देना ठट्ठा नहीं है।

× × × × ×

मुंशीजी की दास्तान सुनने के बाद मैंने अपने कई क्वाँरे मित्रों से अनुरोध किया कि उस अलौकिक रूपवती दरिद्र-कन्या से विवाह करके एक निर्धन भाई का उद्धार और अपने जीवन को सफल करें, किन्तु सबने मेरी बात अनसुनी कर दी। ऐसे-ऐसे लोगों ने भी आनाकानी की, जो समाज-सुधार-सम्बन्धी विषयों पर बड़े शान-गुमान से लेखनी चलाते हैं। यहाँ तक कि प्रौढ़ावस्था के रँडुए मित्र भी राजी न हुए!

आखिर वही महाशय डोला काढ़कर भगजोगनी को अपने घर ले गये और वहीं शादी की; कुल रस्में पूरी करके मुंशीजी को चिन्ता के दलदल से उबारा।

बेचारे मुंशीजी की छाती से पत्थर का बोझ तो उतरा, मगर घर में कोई पानी देनेवाला भी न रह गया। बुढ़ापे की लकड़ी जाती रही, देह लच गई। साल पूरा होते-होते अचानक टन बोल गये। गाँववालों ने गले में घड़ा बाँधकर नदी में डुबा दिया।

× × × × ×

भगजोगनी जीती है। आज वह पूर्ण युवती है। उसका शरीर भरा-पूरा और फूला-फला है। उसका सौन्दर्य उसके वर्त्तमान नवयुवक पति का स्वर्गीय धन है। उसका पहला पति इस संसार में नहीं है। दूसरा पति है—उसका सौतेला बेटा!!

कुंजी

इता न किञ्चित्परतो न किञ्चिद्यतो यतो यामि ततो न किञ्चित् ।
विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित् ॥

× × × × ×

कहते हो कि और को न चाहो ।
मालूम हुआ कि तुम खुदा हो ॥

—आसी

× × × × ×

सुतवनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सबही ते ।
अन्तहुँ तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते ॥

—तुलसी

The world is all a fleeting show,
For man's illusion given;
The smiles of joy, the tears of woe,
Deceitful shine, deceitful flow;
There's nothing true but Heaven.

—*Tom Moore*

१

अगर मौके से टैक्सी-मोटर न मिल जाती तो समझ लीजिये कि गाड़ी छूट ही चुकी थी। मोटर ने तो एक का डेढ़ लेकर ठीक समय पर हवड़ा पहुँचा दिया, मगर वहाँ स्टेशन के कुली असबाब उठाने मे हुज्जत करने लगे। पहले तो वे कंक की तरह असबाब पर टूट पड़े। फिर बारी-बारी करके एक रुपया, डेढ़ रुपया तक नीलामी डाक बोल गये! कुली क्या हैं, तीर्थ के पंडे हैं!

एक संन्यासी ने झट आकर मेरी पेटी उठा ली और कहा—"तुम बिस्तर ले लो, जल्दी करो, नहीं तो गाड़ी छूट जायगी।"

यह कहकर संन्यासी बाबा आगे बढ़े। मैं बिस्तर लेकर ताबड़तोड़ उनके पीछे दौड़ा। कुली बेचारे मुँह ताकते रह गये।

ज्यों ही संन्यासी बाबा के साथ मै डेवढ़े दरजे में सवार हुआ त्यों ही गाड़ी खुल गई।

२

संन्यासी—"तुम-जैसे नवयुवक को तो स्वावलम्बी होना चाहिये। तुम कुलियों का मुँह क्यो ताकते थे? क्या दूसरे पर आश्रित रहकर तुम सुखी होना चाहते हो? क्या अमीरों का यह कोई खास लक्षण है? तुम्हे तो स्वयंसेवक की तरह दूसरों की सहायता के लिये खुद मुस्तैद रहना चाहिये। जब तुम्हे स्वयं

दूसरे की सहायता दरकार है तब तुम औरों की सहायता क्या करोगे ?"

मैं—"गठरी भारी थी। गाड़ी खुलने का वक्त हो चुका था। इसी लिये मैं कुलियों के फन्दे में फँसा था। ईश्वर की कृपा से आप यदि सहायक न मिलते, तो मैं अभी हवड़ा-स्टेशन के मुसाफिरखाने में ही पड़ा झँखता रहता।"

संन्यासी—"तुम जाते कहाँ हो ?"

मैं—"काशी जाता हूँ। मेरे एक सम्बन्धी बीमार हैं। मरने के लिये काशी आये हुए हैं। आज ही उनका तार मिला है। यह गाड़ी छूट जाती तो मेरा सर्वनाश हो जाता।"

संन्यासी—"ऐसी कौन-सी बात है ?"

मैं—"मरनेवाले सज्जन बम्बई के बड़े भारी सेठ हैं। मै उनका मुनीम हूँ। मरने से पहले पहुँच जाऊँगा तो कुछ हाथ लग जायगा।"

संन्यासी—"क्या हाथ लगेगा ?"

मैं—"किस्मत भी फूट जायगी तो दो लाख से कम नहीं।"

संन्यासी—"तब तो तुम दो लाख के लिये जा रहे हो, अपने मालिक के लिये नहीं।"

मैं—"दोनों के लिये समझ लीजिये।"

संन्यासी—"किन्तु प्रधान दो लाख ही समझें। क्यों ?"

मैं—"आप संन्यासी हैं। हमलोग संसारी हैं। हमलोगों के लिये तो नगद-नारायण ही सब-कुछ हैं।"

मेरी बात सुनकर संन्यासी बाबा शान्त और गम्भीर हो गये। उन्होंने दीर्घ निःश्वास खींचकर कहा—

'भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते !'

यह कहकर उन्होंने आकाश की ओर देखा, और हाथ जोड़कर आँखें बन्द किये हुए सिर झुकाया; फिर मेरी ओर देखने लगे।

मैं—"महाराज ! अभी आपने यह क्या किया है ?"

संन्यासी—"उस परमात्मा की वन्दना की है, जिसकी यह लीला है।"

मैं—"लीला कौन-सी ?"

सन्यासी—'स्वार्थ की विकट लीला के सिवा इस संसार में दूसरी लीला कौन-सो है ?"

मैं—"क्या स्वार्थ के सिवा इस संसार में कुछ है ही नहीं ?"

संन्यासी—"है क्यों नहीं ? किन्तु प्रत्यक्ष तो स्वार्थ ही है। और जो कुछ है वह अन्तरिक्ष है। उस अदृश्य लीला को ये आँखें नहीं देख सकतीं।"

मैं—"तो फिर उन्हें देखने के लिये क्या ईश्वर ने इन दो के सिवा कोई तीसरी आँख भी बनाई है ?"

संन्यासी—"हाँ, वही ज्ञानचक्षु है। उसके खुल जाने पर ये दोनों बन्द हो जाती हैं।"

मैं—"तो क्या मनुष्य अंधा हो जाता है ?"

संन्यासी—"नहीं, सूर्योदय के बाद दीपक की आवश्यकता नहीं रहती।"

मैं—"अच्छा, तो वह ज्ञान की आँख खुलती कब है ?"

संन्यासी—"जब ईश्वर की दया होती है।"

मैं—"आपपर पहले-पहल कब ईश्वर की दया हुई थी ?"

इतना पूछते ही संन्यासी बाबा फिर शान्त और गम्भीर हो गये। थोड़ी देर पूर्ववत् ध्यानस्थ हो, मेरी तरफ़ मुख़ातिब होकर कहने लगे—

"जिस विधाता ने हंस को श्वेत वर्ण, शुक को हरित वर्ण, कोकिल को कृष्ण वर्ण, कोकनद को अरुण वर्ण, चम्पा को पीत वर्ण, और इन्द्रधनुष को विविध वर्णों से रञ्जित किया तथा मयूरपुच्छ को सुचारु चमकीले रङ्गों से चित्रित किया, उसी विधाता ने इस संसार पर स्वार्थ का गाढ़ा रङ्ग चढ़ा दिया। जिस प्रकार अग्नि से ताप, सूर्य्य से प्रकाश, चन्द्रमा से चन्द्रिका, पृथ्वी से गन्ध, जल से शीतलता, बिजली से चञ्चलता, मेघ से श्यामता और पुष्प से सुकुमारता नहीं दूर की जा सकती; उसी प्रकार संसार से स्वार्थ-परता भी अलग नहीं की जा सकती।"

"दरिद्रता और दुःख का जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस संसार के स्वार्थ का भी वैसा ही गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार आलस्य सब रोगों का घर है, उसी प्रकार यह संसार भी समस्त स्वार्थों का अखाड़ा है। यहाँ यदि स्वार्थों के संघर्ष से दारुण दावानल न धधकता होता, तो यह नन्दन-कानन से भी अधिक रमणीय और शीतल समझा जाता। इस विलक्षण संसार के प्रत्येक कण में स्वार्थ की सत्ता भरी है। यदि स्वार्थ निकल जाय, तो इस संसार की विचित्रताएँ रहस्यशून्य हो जायँ।"

"जो स्वार्थ का फन्दा तोड़ देता है, वह इस संसार-कारागार से मुक्त हो जाता है। वह संसार को परास्त कर देता है। संसार उसके चरणों में झुक जाता है और वह संसार के सिर

पर अभयवरद हाथ रख देता है। किन्तु स्वार्थ आकाश-वल्लरी की तरह इस विश्व-विटप पर छा रहा है। उस उलझनदार जाल को तोड़ना सहज नहीं है।"

मैं—"महाराज! आपने उस जाल को कैसे तोड़ा था?"

सं०—"अभी तक मैं तोड़ नहीं सका! हाँ, तोड़ सकूँगा, ऐसी आशा है। उस आशा की ज्योति मेरे पिता की धधकती हुई चिता की ज्वाला ने जलाई थी।"

मैं—"आपकी रामकहानी सुनने के लिये उत्सुकता हो रही है। क्या आप कृपा करके सुनायेंगे?"

सं०—"यदि उसके सुनने से तुम्हारा कुछ उपकार हो सकता है, तो मैं संक्षेप में सुना सकता हूँ।"

मैं—"आपके आदर्श जीवन-वृत्तान्त से मेरा अवश्य ही उपकार होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है। सत्सङ्ग की महिमा सबसे बढ़कर है। आपकी बातों से मेरा कौतूहल भी शान्त होगा और मैं बहुत-कुछ उपदेश भी प्राप्त करूँगा।"

सं०—"एवमस्तु। मैं मध्यप्रदेश के एक बहुत बड़े जमींदार का पुत्र था। मेरे पिता चार भाई थे। जब मेरे पिता मृत्युशय्या पर पड़े-पड़े अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे, तब मैं बिलकुल मदान्ध नवयुवक था। मेरे पास सांसारिक चिन्ताएँ फटकने नहीं पाती थीं।"

"कभी-कभी मैं अपने पिता की रोग-शय्या के पास बैठकर उनके सजल नेत्रों के आँसू पोंछा करता था। वे रह-रहकर बड़े स्नेह से मेरे हाथों को चूम लिया करते थे। उनके स्नेह का अन्तिम उच्छ्वास देखकर मेरा हृदय उमड़ आता था। उनके

पवित्र वात्सल्य की मन्दाकिनी आज भी मेरे हृदय से उमड़कर आँखों की राह प्रवाहित हो रही है।"

इतना कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं। मेरी आँखों में भी आँसू छलछला उठे। मैंने अधीर होकर पूछा—"आप संन्यासी क्यों हुए?"

सं०—"वही तो कह रहा हूँ। मेरे पिता जिस दिन मरने लगे उस दिन वे पूर्ण चैतन्य थे। वे अपने सामने की दीवार मे टँगे हुए श्रीराधाकृष्ण के चितचोर चित्र को देख रहे थे। इतने में, देखते-ही-देखते, उनकी आँखें उलट गईं। घर में हाहाकार मच गया। मेरा बना-बनाया संसार बिगड़ गया।"

"माता ने मेरा मुख देखकर धैर्य धारण किया। वह मुझे अपनी गोद में लेकर अपने दुःखों को भूल गई!"

"मेरी पत्नी ने दिखावे के आँसू ढालकर कहा—"आप शोक करके अपने शरीर को मत गलाइये।"

"वहीं से मेरा माथा ठनका!"

"माता ने अपने स्नेहाञ्चल से जब मेरे आँसूओं को पोंछा और मेरी ठुड्डी पकड़कर कहा—'मैं तुम्हारे लिये जीती हूँ, नहीं तो मुझे जीना नहीं चाहिये'—तब भी अन्दर से मेरे हृदय में कोई ठोकरें मार गया। किन्तु उस ठोकर से मोह का घड़ा न फूट सका।"

"पहले भी जब चाचाजी मेरे पिता की रोग-शय्या के पास बैठकर धीरे-धीरे उनसे रुपये-पैसे और लेन-देन की बातें पूछते थे, तब मैं पिताजी को बड़े कष्ट से उत्तर दे सकने में भी असमर्थ देखकर अशान्त हो उठता था। किन्तु हृदय की वह घोर अशान्ति भी मोह-निद्रा को भङ्ग न कर सकी।

मैं—"तो क्या आप अपने चाचा के दुर्व्यवहारों से ऊबकर घर से भाग निकले ?"

सं०—"बीच ही में मत छेड़ा करो। मैं जो कुछ कहता जाता हूँ, उसे शान्त भाव से सुनते चलो। जब मेरे पिता की रथी श्मशान मे पहुँची, तब उनका शव चिता पर रखकर मुझे अग्नि-संस्कार करना पड़ा। हृदय को वज्र बनाकर मैंने वह भी कर डाला। देखते-ही-देखते चिताग्नि धधक उठी !"

"तबतक मेरे ताऊ ने चिल्लाकर कहा—'उफ ! कमर का धागा तो तोड़ा ही नहीं गया। उसी मे तिजोरी की कुंजी भी रह गई है। हाय ! सर्वनाश हो गया !"

"बड़े चाचा का चिल्लाना था कि छोटे चाचा ने रथी के बाँस से सजाई हुई चिता बखेर दी। मेरे पिता का अर्द्ध-दग्ध शरीर चिता से कुछ खिसक पड़ा। कमर का धागा जल गया था। कुंजी आग में गिरकर लाल हो गई थी। उसे झट बाहर निकालकर छोटे चाचा ने धूल में ढँक दिया।"

"वही कुंजी ! वही कुंजी !! वही कुंजी मेरे अज्ञान का ताला खोलने में समर्थ हुई। वहीं मैंने इस संसार का असली रूप देखा। वहीं मेरी तीसरी आँख खुली। वहीं मेरे जीवन की ज्योति का विकास हुआ।"

इतना कहते-कहते संन्यासी बाबा ध्यानस्थ हो गये, और मैं एक अपूर्व—किन्तु तीव्र—चिन्ता-स्रोत में डूब गया !

❧

शरणागत-रक्षा

सोऊँगा न शान्ति-शय्या पर यदि स्वदेश हो सुखी नहीं,
कभी न देख सकूँगा अपने देशबन्धु को दुखी कहीं।
शरणागत के अभय-दान-हित कर्कश कष्ट उठाऊँगा,
अपने पूज्य पूर्वपुरुषों की शुभ सन्तान कहाऊँगा।
वसुधे ! यदि प्रण-भङ्ग-भाव का ध्यान मात्र भी उठे कभी,
मेरा मुँह न दिखाई दे फिर फट जाना कर दया तभी।
दिव्य दिशाओ ! साक्षी हो तुम, पुण्य प्रतिज्ञा करता हूँ,
परमपिता ! बल देना, तेरी ज्योति हृदय में भरता हूँ।

—गोकुलचन्द्र शर्मा

× × × × ×

Little deeds of kindness,
Little words of Love,
Make our earth an Eden,
Like the heaven above.
Little seed of mercy,
Sown by youthful hands;
Grow to bless the nations,
Far in fairy lands.

—*Cobham Brewer.*

× × × × ×

वद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ॥
आर्त्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणङ्गतः।
अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

—वाल्मीकीय रामायण (युद्धकांड)

१

पठान-सम्राट् अलाउद्दीन को शिकार का बड़ा शौक था। कहते हैं, वह आखेट का ऐसा अनुरागी था कि सल्तनत के बड़े-बड़े जंगल खास इसी मसरफ के लिये, सुरक्षित रक्खे जाते थे। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो वह अपनी महलसरा बेगमों को साथ लेकर, जंगलों में शिकार की ग़रज़ से महीनों पड़ाव डाले पड़ा रहता था।

भारतवर्ष में विन्ध्याटवी की बड़ी प्रसिद्धि है। विन्ध्यकानन का सुदीर्घव्यापी विस्तार भारत के कटि-प्रदेश को आच्छादित कर रहा है। उसकी सघनता अगम्य है, नैसर्गिक शोभा दर्शनीय है। कहीं हरीतिमा और शीतलता परस्पर लिपटकर सो रही हैं, कहीं सघनता और विकरालता भीषण तांडव-नृत्य कर रही हैं। कहीं पल्वल के स्वच्छ जल से प्यास बुझाकर मृग-दल जङ्गल में मङ्गल मना रहा है। कहीं मृगी-प्राणाधार मृग का उष्ण रक्तपान कर शेर दहाड़ रहा है। कहीं रंग-बिरंग की चिड़ियों का कल गान और कहीं परम भयावह अजगरों की फुफकार! उफ! 'डरपहिं धीर गहन सुधि आये!'

विन्ध्यारण्य के एक प्रान्त में शाही छोलदारियाँ पड़ी हुई थीं। कुछ खेमे तो काश्मीरी दुशालों के थे। उनमें गंगा-जमनी चोबें और रेशमी डोरियाँ लगी हुई थीं; बेगमों के बड़े सजीले पलँग पड़े हुए थे। उन्हीं तम्बू-कनातों के बीच में एक गोल मखमली शामियाना था, जिसके चारों ओर चमन बनाया गया था।

मध्याह्न-कालीन मार्तण्ड का यौवन ढल चुका था। अलाउद्दीन मृगया के निमित्त निकल चुका था। बीचवाले शामियाने में बेगमें ताश और शतरंज खेल रही थीं। कभी पान का नहला रंग लाता था, कभी बीबी पर गुलाम हमला कर बैठता था। कभी टेढ़ी चाल से प्यादा वज़ीर हो जाता था, कभी बादशाह पाखाने में कैद हो जाता था! क़हक़हे से चमन गूँज उठता था। उस क़हकहे के कमनीय कोलाहल में एक शुभ्र शान्त मृदु मन्द मुस्कान की ज्योति झलक उठती थी। वह ज्योति की रमणीय रेखा 'ऐसे सुकुमार अधरों' को रंजित करती थी, जिनकी मधुर मदिरा में सम्राट् को बे-सुध करने के लिये काफी मादकता थी।

२

बेगमों की इच्छा जल-क्रीड़ा करने की हुई। बाँदियों ने पता लगाया, पास ही में एक अच्छा-सा तालाब था। बेगमें एक साथ ही निकल पड़ीं। उनके खीमों पर कड़ा पहरा बैठ गया। बाँदियाँ साड़ियाँ वगैरह लेकर पीछे-पीछे चलीं। पर बेगमों ने उन्हे वापस कर दिया।

अलाउद्दीन की अनुपस्थिति में पूर्ण स्वच्छन्दता की तरंग तबीयत में आ गई। सब-की-सब सिर्फ साड़ी पहनकर, मुंड बाँधकर, परस्पर गलबहियाँ डालकर पैदल ही जङ्गल में घुस गईं। मन की मौज ही तो है, एक भी बाँदी साथ न आने पाई।

चहकती, फुदकती, मटकती चली जाती थीं। कोई मखौल करती, कोई खिलखिलाती, कोई चौंकती। कोई मंदस्मितयुक्त

तीक्ष्ण कटाक्षपात से, अंचल पकड़नेवाली प्रगल्भ झाड़ियों का, उपहास करती। कोई कूकने में कोयल से बाजी मार ले जाती और 'एक कोई' रंग-बिरंग तितलियों को पकड़ने के लिये उस वन की सघन श्यामता में विद्युल्लता की तरह चंचल हो उठती।

तालाब के तीर पर पहुँचकर सबने साड़ियाँ उतारकर किनारे रख दीं।

पद्म-पराग से पुष्करिणी का जल सुवासित था। सुस्थिर सरोवर के प्रशान्त वक्षःस्थल पर कोमल-कमल-कलिकाएँ मुस्कुरा रही थीं। मधुप-मंडली मँडरा रही थी। जलकुक्कुट जल-तरंग बजा रहा था।

बेगमें पुलकित हो उठीं। एक दूसरी को ताकने और मुस्कुराने लगीं। उनकी स्वच्छन्दता और प्रफुल्लता आनन्दोन्मत्तता में परिणत हो गई। देखते-ही-देखते प्रकृति की गोद मे पले हुए कासार-किशोर कमल, 'पठान-सम्राट् के मानस-सर में खिले रहनेवाले स्वर्ण-कमलों' से तिरस्कृत और लज्जित होकर, सम्पुटित हो गये।

आकाश में घन घुमड़ आये। मालूम हुआ, प्रलय-काल की वर्षा होगी। पर यह क्या! मेघ छँट गये, आसमान हँस उठा। फिर हाहाकार सुन पड़ा। जान पड़ा कि दो क्रोधित विषधर पास ही की झाड़ी में लड़ रहे हैं।

बेगमों ने जल उछालना और किलोलें करना बंद कर दिया। सब-की-सब कान देकर सुनने लगीं। हाहाकार प्रचंड हो उठा। वे शंकित हो गईं। धीरे-धीरे तालाब से निकलने लगीं। हाहाकार सघन और गंभीर होता गया। एकाएक

झाड़ियाँ काँप उठीं। बेगमें बाहर निकलने का दौड़ीं। आँधी ने राह बन्द कर दी। आँखों के आगे लाल-पीला अन्धकार छा गया!

तरुण तूफान बड़ा रसिक निकला, तरुणियों की साड़ियाँ उड़ा ले गया! जो जिधर समा सकी, भाग निकली। साड़ियों को सुध भूल गई, जान की खैर मनाने लगीं। काँटों से अंग छिल गये, मगर ज़रा भी दर्द न हुआ, सम्राट् का खौफ जो था!

जब वे नंगी-धड़ंगी खेमे में पहुँचीं, बाँदियाँ मन-ही-मन मुस्कराने लगीं—उन्हें साथ न ले जाने का मजा मिल गया!

'नई बेगम' की बाँदी परेशान थी। उसकी स्वामिनी का कहीं पता नहीं! तमाम सन्नाटा छा गया। काटो तो किसी के खून नहीं। घुड़सवार छूटे। चारों ओर जंगल में फैल गये। कहीं कोई नहीं! नई बेगम ला-पता!!

घुड़सवार खाली हाथ लौट आये। बेगमों के कलेजे धड़कने लगे। पहरेदार सिर पीटने लगे। वह बाँदी अपने कलेजे में कटार भोंकने चली।

बड़ी बेगम ने हाथ पकड़ लिया—"अभी ठहरो, सवार तो लौट आये; पर सवारों का सरदार अभी नहीं लौटा, शायद किस्मत अच्छी हो।"

२

सवारों का सरदार उसी तालाब के आसपास चक्कर काट रहा था। हर-एक झाड़ी छान डाली, कुछ हाथ न आया।

एकाएक इत्र की सुगंध से वायुमंडल भर उठा। सरदार चौकन्ना हो गया। सावधानी से आहट लेने लगा।

अनायास आँखें चकित हो गईं, सिर झुक गया। सिर का साफा सामने फेंकते हुए नीची नजरों से कहा—"पहले इसे पहन लीजिये।"

बेचारी सुकुमारी बेगम ठंढक से काँप रही थी। केश बिखरे हुए थे। अलक झूल रहे थे। जान पड़ता था, जंगल में श्वेत चदन के वृक्ष पर भुजंग झूमते हों।

सरदार का साफा सौभाग्यवश सुंदरी की साड़ी बन गया। उसमें पुरुषत्व की उत्कट गंध थी। बेगम विह्वल हो उठी। बोली—"मैं सर्दी से जकड़ रही हूँ, कोई ऐसी तद्बीर करो कि सेहत हासिल हो।"

सरदार—"मैं फौरन् चकमक से आग जलाता हूँ।"

बेगम—"आग तो खुद मेरे दिल मे धधक रही है।"

सरदार—"तो ताबेदार को जो हुक्म हो, बजा लाये।"

बेगम—"मुझे अपनी गोद में लेकर प्यार करो!"

सरदार—"(आश्चर्य्यित होकर) इसमें मेरी जान का खतरा है!"

बेगम—"यों भी अब तुम खतरे से बच नहीं सकते।"

सरदार—"लेकिन आपको इज्जत मुझे अपनी जान से भी प्यारी है।"

बेगम—"मेरी इज्जत प्यारी है, मेरी जान नहीं?"

सरदार—"वह तो और भी प्यारी है। उसीके लिये मै इतनी गुस्ताखी कर रहा हूँ।"

बेगम—"मेरी जान का खौफ छोड़ दो, मैं चुटकियों में मौत को उड़ा दूँगी। और, तुम तो नाहक अपने सिर बला मोल ले रहे हो, लबों से लगा हुआ आबे-हयात का प्याला फेंककर जहर के घूँट पीने जा रहे हो। क्या तुम नहीं जानते कि मैं इशारे पर तुम्हारे बादशाह-सलामत को नचाती हूँ?"

सरदार—"मुझे सब कुछ मालूम है। लेकिन गुनाह गहरा है, रूह काँप उठती है, ईमान छटपटा रहा है।"

बेगम—"लेकिन मेरी बैचेनी सबसे बढ़ी-चढ़ी है। हीला-हवाला कारगर न होगा। सिपह-सालारी तुम्हारे ही बाँटे पड़ेगी।"

सरदार—"ओहदे के लिये बेहूदा हरकत करना मुझे पसंद नहीं। मैं माफी चाहता हूँ।"

बेगम—"नागिन को छेड़कर मत छोड़ो। खबरदार!"

सरदार—"हिम्मत की भी हद होती है।"

बेगम—"अच्छा, तो पहले मैं ही तुम्हे प्यार करूँगी।"

सुनते ही सरदार संकोच से सिकुड़ गया। बेगम आत्म-विस्मृति में डूब गई। वह एकान्त वनस्थली दो मुग्ध हृदयों की क्रीडास्थली बन गई।

बेगम की वासनाएँ तृप्ति की ओर बढ़ी चली जा रही थीं, और पास ही की झाड़ी से निकलकर एक शेर इनकी ओर बढ़ा चला आ रहा था।

सरदार ने मुस्कराते-ही-मुस्कराते तीर-कमान साधा। शेर भूमिसात् हो गया, बेगम भी शान्त हो गई!

उद्वेग संतोष में बदल गया। चंचलता और चुहल शिथिलता में परिणत हो गई। दन्तक्षत और नख-क्षत के रूप में जिन्दगी-भर के लिये मुहब्बत का दमामी पट्टा लिखा गया। उसे अंत में गाढालिङ्गन के लिफाफे में बन्द कर उसपर चुम्बन की पक्की मुहर लगाई गई।

बेगम घोड़े पर सवार होकर शाही कैम्प में चली गई।

सरदार ने अपने प्रेम-पुरस्कार को—मोतियों के बेशकीमत हार को—अनेक बार आँखों से, छाती से, लगाया; चूमा और उसे हँसते-हँसते खलीते में डालकर आगे बढ़ते हुए मन-ही-मन कहा—'न जाने आज मेरी खुशकिस्मती का इतना जबरदस्त तूफान किधर से आ गया!'

४

दिल्ली के शाही महल के सामने, चाँदनी रात मे, अलाउद्दीन, अपनी नई बेगम के साथ, यमुना में जल-विहार कर रहा था।

चंदन की किश्ती चमेली के गजरो से सजाई गई थी। दूर-दूर पर गायिका सुन्दरियों की किश्तियाँ थी। यमुना के अतल श्यामल हृदय पर पूनो के चाँद की किरण-कुमारियाँ गुप्त-हीरक खेल खेल रही थीं। नैशगगन की शुभ्र विभूति धरातल पर दूध बरसा रही थी। समस्त दृश्यमान जगत् क्षीर-सागर में नहा रहा था।

अलाउद्दीन ने बेगम की सुचुक चिबुक को दबाते हुए कहा—"जान मन! तुम्हारे इस लासानी मुखड़े को देखकर चाँद

निहायत शर्मिन्दा हो गया है। देखो, वह जमना में डूब मरा।"

बेगम ने अपनी सुराहीदार गरदन झुकाकर देखा। हँस पड़ी। सौन्दर्य-गर्व-गरिमा से आँखें खिल उठीं। चेहरे पर चौगुना रौनक छा गई। गाल गुल्लाला हो उठे।

अलाउद्दीन का नशा खिलने लगा। शराबी की शरारत और विलासिनी की भावभंगिमा ने दरियाई सैर की सरसता में उत्कट उत्तेजना भर दी।

उन्मत्त अलाउद्दीन नई बेगम को दृढ भुज-पंजर में कसकर स्फीत चुम्बन का रसास्वादन कर रहा था। अकस्मात् किश्ती की बगल ही में दो विशाल जल-जन्तु लड़ पड़े। जल में एका-एक घोर शब्द उत्पन्न हुआ। निशीथकाल में यमुना जग पड़ी। उथल-पुथल मच गया। किश्ती हिल उठो। भुज-पाश अचानक शिथिल हो गया। चुम्बन का चाव चंपत हो गया। बेगम अनायास हँस पड़ी।

अलाउद्दीन—"तुम्हें इतने जोर की हँसी क्यों आई?"

बेगम—"यों ही, इसकी कोई खास वजह नहीं।"

अलाउद्दीन—"है तो जरूर और तुम्हें बतलाना भी पड़ेगा जरूर; लेकिन इस वक्त तुम झूठ बोल रही हो, इसका नतीजा अच्छा न होगा।"

बेगम—"नतीजा चाहे जो हो, मेरी हँसी की कोई खास वजह नहीं।"

बेगम की हँसी ने बादशाह के पुरुषत्व का उपहास किया था। वह अपनी झेंप और झुँझलाहट के झकोरे में पड़कर

क्षुब्ध हो उठा। सुन्दरी युवती प्रेयसी द्वारा पौरुष का तिरस्कार सर्वथा असह्य होता है।

अलाउद्दीन—"अगर सच-सच अभी न बताओगी, तो कल फाँसी की सजा दे दूँगा। याद रहे!"

बेगम—"महज़ छोटी-सी बात पर आप इस क़दर आपे से बाहर हो गये, यह निहायत अफ़सोस की बात है।"

अलाउद्दीन—"बस, तुम्हारी शेखी और गुस्ताखी बहुत देख चुका, अब पशोपेशी छोड़कर साफ़-साफ़ कह डालो, नहीं तो खैरियत न होगी।"

बेगम—"जान-बख्श पाऊँ, तो साफ़-साफ़ कह सुनाऊँ।"

अलाउद्दीन—"मैं जबान हारता हूँ, पक्का वादा करता हूँ, सब बातें सुनकर तुम्हे इसी जगह कलेजे से लगाकर सुबह तक प्यार करता रहूँगा।"

बेगम—"एक जान और बख्श दीजिये, मै शुरू से पूरा किस्सा बयान करती हूँ।"

अलाउद्दीन—"खैर, यह भी सही, देर न करो।"

किस्सा कोताह, बेगम ने उस सरदार की मरदानगी और दिलेरी का ऐसा खाका खींचा कि अलाउद्दीन का चेहरा सुर्ख हो गया। कभी वह दाँत पीसता, कभी हाथ मलता, कभी कलेजा पकड़ता, कभी सिर पीटता। अजीब परेशानी थी।

बेगम ताड़ गई। सोचने लगी—"बड़ी नादानी हुई; भंडा भी फूटा, किस्मत भी फूटी!"

५

होनी होकर रही। बेगम और सरदार कैदखाने में सड़ने लगे। एक घूँट पानी के लिये तरसने लगे। फाँसी का दिन निश्चित हो गया।

सरदार का भाई सन्तरी था, बेगम का भाई कोतवाल। दोनों सहमत होकर जान पर खेल गये। बेगम और सरदार कठोर कारागार से भाग निकले।

सुबह में बादशाह को दिखला दिया गया, जेल की दीवार पर बाहर की ओर कमंद लटक रही थी!

बेगम और सरदार भारतवर्ष के शक्तिशाली राजाओं के यहाँ पनाह माँगते फिरे। रातपूताने के राजाओं ने भी शरणागत-रक्षा के क्षात्र-व्रत से मुँह मोड़ लिया।

वे हताश होकर 'हम्मीर' की शरण में पहुँचे।

दरबार लगा हुआ था। सरदार ने कातर स्वर से शरण की याचना की। 'हम्मीर' की भुजाएँ फड़क उठीं। प्रशस्त ललाट से तेजस्विता की जगमग जोत छिटकने लगी। उठकर शरणागत के पास आये और उसे उठाकर छाती से लगाते हुए बोले—"संसार की कोई शक्ति तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकती। जबतक शरीर में प्राण है, शरणागत-रक्षा का व्रत पालन करूँगा, क्षात्र-धर्म का उद्धार करूँगा, राजस्थान की लाज रक्खूँगा। अभय हो जाओ, किले के अन्दर निश्चिन्त पड़े रहो, इन भुजाओं के साये में प्रत्येक त्रस्त प्राणी त्राण पा सकता है। अपने को सर्वथा सुरक्षित समझकर सारा वृत्तान्त सुनाओ।"

आद्यंत वृत्तान्त सुनकर सारी सभा चकित हो गई। एक ही इशारे पर हज़ारों हाथों ने म्यान खाली कर दी। सरदार को विश्वास हो गया, वह कृतकृत्य हो गया।

महाराणा की छत्रच्छाया में किले के अंदर वह निष्कंटक जीवन-यापन करने लगा। क्षत्राणियों के तेज-ओज के सामने बेगम निष्प्रभ हो गई।

शाही जासूसों ने अलाउद्दीन के कान भर दिये। दिल्ली से संवाद आया—"नेस्त-नाबूद कर दूँगा।"

चित्तौर-गढ़ की एक गगनारोही अट्टालिका पर अट्टहास करता हुआ एक मनस्वी वीर स्वाभिमान के साथ गरज उठा—"ऐसी गीदड़-भबकियाँ किसी और को दिखा। यहाँ तुम्ह-जैसों की कोई खाक परवा नहीं करता।"

आस-पास की पहाड़ियों ने इस गगन-भेदी गर्जन को दुहरा दिया, मानो चित्तौर की चहारदीवारियों ने भी स्वर में स्वर मिला-कर कहा—"पुर्जे-पुर्जे कट जाने पर भी अपने अंक में आये हुए की हम रक्षा करेंगी।"

प्रतिकूल वायु ने यह स्वाभिमानपूर्ण संदेश दिल्ली-पर्यन्त वहन किया। इसकी उग्रता को अलाउद्दीन ने कलेजा थामकर सहन किया।

वजीर की बुलाहट हुई। फौरन् फरमान निकला—"चढ़ चलो, चित्तौर को चकनाचूर कर डालो।"

चुने हुए पचास हज़ार पठान जवान शान-शौकत के साथ चित्तौर-गढ़ पर चढ़ चले।

६

अपने ही हाथों से हम्मीर ने उस शरणागत सरदार के सिर पर सेनापतित्व का सेहरा बाँधा। राजपूतों ने बहुत रोका, हम्मीर ने एक युद्ध-कुशल वीर की प्रचंड लालसा को ज़बरन दबाना अनुचित समझा।

रण-परिच्छद से सुसज्जित होकर हम्मीर अपनी जननी के आशीर्वाद ग्रहण करने गये। माता ने माथा सूँघकर स्नेह-पूर्वक कहा—"जाओ, विजयी होकर मेरे दूध की लाज रक्खो, और क्षात्रधर्म की मर्यादा का पालन करो।"

हम्मीर मचल उठे। धनुष, तीर, तलवार अलग फेंककर खंभे से खड़े हो गये।

माता विस्मित होकर बोली—"यह अनवसर अनावश्यक औदासीन्य कैसा?"

हम्मीर—"मुझे वही पुराना आशीर्वाद नहीं चाहिये। तुझ जैसी वीर-जननी से मैं नवीन स्फूर्त्ति पैदा करनेवाला शुभाशिष चाहता हूँ। मुझे वर दो कि जाकर शत्रु का सिर काट लाओ या रणचंडी की भेंट हो जाओ।"

माता के स्तनों से दूध की धारें निकल पड़ीं। गद्‌गद कंठ से बोली—"तथास्तु।"

× × × × ×

हफ्तों लड़ाई चली। राजपूतों ने दिखा दिया कि हम कितने पानी में हैं। अलाउद्दीन जिसे घुना चना समझता था, वह लोहे का चना निकला। मद का ज्वर उतर गया। छठी का दूध याद पड़ने लगा।

हम्मीर हरदम उस सरदार की रक्षा में रत रहते थे। उन्होंने अन्त तक अपना व्रत निबाहा।

अंतिम दिन उस सरदार पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा। पठान-सेना ने उसे अकेले ही घेर लिया। उसने भयानक मार-काट मचाई, फिर भी शत्रुओं के घेरे से रिहाई न पाई। उत्साहित पठान-सेना हैरत में आ गई!

दुर्ग-द्वार की मोर्चाबन्दी छोड़कर लू के समान घोड़ा दौड़ाये हम्मीर पहुँच गये। हजारों को तलवार के घाट उतारा, शरणागत को मौत के पंजे से उबारा।

सुअवसर पाकर सुरक्षित सेना उमड़ आई। रणभूमि रक्त-प्लावित हो गई। दोनों वीरों का स्वागत करने के लिये मृत्यु सोल्लास खड़ी थी।

सरदार कह रहा था—"मा मृत्यु! पहले मुझे अपनी गोद में उठा ले! मैं तेरे आदेशानुकूल अपने इस आश्रयदाता की अगवानी करूँगा।"

हम्मीर कहते थे—"मा मृत्यु! यदि मै तेरा सच्चा भक्त हूँ, तो मेरी प्रार्थना पहले स्वीकार कर, पहले मुझे ही अपनी गोद में विश्राम करने दे, ताकि मैं अपनी शरण की गोद मे विश्राम करनेवाले इस सरदार को अपने पीछे-पीछे स्वर्ग तक ले जा सकूँ।"

हम्मीर की प्रतिज्ञा और सरदार की कृतज्ञता में होड़-सी मच गई। अगत्या हम्मीर का हठ और हौसला पूरा हुआ।

सरदार ने हम्मीर-हन्ता को यमपुर पठाया। मृत्यु ने सरदार को प्यार-भरे इशारे से अपने पास बुलाया और दोनो को अपनी

गोद में बिठाकर हँसते-हँसते कहा—"महाराणा! यवन-सरदार! तुम दोनों धन्य हो, यदि तुम दोनों की तरह हिन्दू और मुसलमान परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होकर प्रेमपूर्वक रहने लगें, तो आज जो भारतवर्ष मारकाट और खूनखराबा से मरघट बन रहा है, तथा मैं भी अजीर्णता की पीडा से बेचैन हो रही हूँ, वह न हो। आज तुम-जैसे दृढप्रतिज्ञ, शरणागत-रक्षक और यवन-सरदार-जैसे वीर-व्याघ्र कर्त्तव्यपालक को अपनी गोद में लेकर मैं कृतकृत्य हो गई। मालूम नहीं, तुम-जैसों से फिर यह गोद कब अलंकृत होगी!"

बुलबुल और गुलाब

Love! What a Volume in a word!
An Ocean in a tear;
A Seventh heaven in a glance!
A Whirlwind in a sigh!
A Lightening in a touch!
A millennium in a moment!

—*Tampper.*

× × × ×

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्-
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥

—भवभूति

× × × ×

इब्तिदा ही में मर गये सब यार।
इश्क की पाई इन्तहा न कभू ॥

—मीर

कहता है कौन नालाए बुलबुल को बेअसर।
परदे मे गुल के लाख जिगर चाक हो गये ॥

—ग़ालिब

न गुल अपना न ख़ार अपना न जालिम बाग़बाँ अपना।
बनाया आह किस गुलशन में हमने आशियाँ अपना ॥

—नजीर

× × × ×

It was the nightingale, and not the lark,
That pierced the fearful hollow of thine ear;
Nightly she sings on yon pomegranate tree:
Believe me, love, it was the nightingale.

—*Shakespeare.*

१

उसने कहा—"यदि तुम मेरे लिये लाल गुलाब का फूल ला दोगे, तो मैं तुम्हारे साथ नाचूँगी।"

युवक ने कहा—"हाय! मेरे बगीचे भर में कहीं लाल गुलाब का फूल है ही नहीं।"

अपने घोसले में बैठी हुई बुलबुल ने युवक की बात सुनी। वह विस्मित होकर पल्लवों की आड़ से झाँक रही थी।

युवक की सुन्दर आँखें छलछला उठीं। वह शोकातुर होकर कहने लगा—"हाय! मनुष्य का आनन्द कैसी तुच्छ वस्तु पर निर्भर करता है। मैंने बड़े-बड़े विद्वानों के लिखे ग्रंथ पढ़ डाले, दर्शनशास्त्र के रहस्य भी समझ लिये; किन्तु आह! आज एक लाल गुलाब के बिना मेरा जीवन कितना दुःखमय हो गया!"

बुलबुल बोल उठी—"सचमुच यह सच्चा प्रेमी है! मैं दिन-रात प्रेम का गीत गाती हूँ, तो भी मैं प्रेम करना नहीं जानती। रोज रात को मैं आसमान के तारों से प्रेम की कहानी कहती हूँ; पर आज ही उस प्रेम के दर्शन हुए हैं। कैसा सुन्दर युवक है! जामुन-से काले-काले बाल, लाल गुलाब-से होंठ! प्रेम की पीड़ा से मुखड़ा पीला पड़ गया है! भौंवों पर व्यथा की छाप पड़ गई है।"

युवक फिर मन्द स्वर से कहने लगा—"राजकुमार कल रात को उसे पुष्पगुच्छ देगा और मेरा प्रेम हवा हो जायगा! यदि मैं

उसे लाल गुलाब लाकर दूँ, तो सुबह तक वह मेरे साथ नाचेगी। मैं उसे अंक में भरूँगा। वह मेरे कन्धे पर सिर रखकर प्रेम जतायेगी, मेरे हाथों को अपने हाथों में चाँपेगी। किन्तु हाय! सारे बगीचे में कहीं एक भी लाल गुलाब नहीं! अब मैं यहीं अकेला बैठता हूँ। वह इधर ही से निकलेगी और मेरी ओर ताकेगी भी नहीं, बस मेरा दिल टूक-टूक हो जायगा!"

बुलबुल फिर बोल उठी—"वास्तव में यह सच्चा प्रेमी है! मेरे प्रेम-संगीत में जो वेदना होती है, उसे यह सह रहा है। जो मेरे लिये आनन्दप्रद है, वही इसके लिये व्यथा बन गई है। निश्चय ही प्रेम एक अद्भुत पदार्थ है। यह रत्नों से भी बढ़कर मूल्यवान् है। हीरे-मोतियों से यह खरीदा नहीं जा सकता। बाजार में इसकी दूकान नहीं लगती। धनकुबेर सेठ भी इसे मोल नहीं ले सकते। इसकी बराबरी में सोना भी तौला नहीं जा सकता।"

युवक बोला—"राजमहल की रंगशाला में संगीतज्ञों की मंडली वीणा और वंशी बजायेगी, वह सुर-ताल पर थिरक-थिरककर नाचेगी। वह ऐसी बारीकी से नाचेगी कि पृथ्वी को उसका चरण-स्पर्श भी नसीब न होगा। सुन्दर-सुन्दर पोशाक पहनकर दरबारी लोग उसे चारों ओर से घेर लेंगे। किन्तु हाय! मेरे साथ वह नहीं नाचेगी; क्योंकि मैं उसे लाल गुलाब की भेंट नहीं दे सकता।"

यों ही बड़बड़ाता हुआ युवक, हरी-हरी घासों के फर्श पर, बेसुध-सा गिर पड़ा। हाथो से अपना मुँह छिपाकर फूट-फूट रोने लगा।

पंख फड़फड़ाता हुआ भौंरा उधर से निकला। पूछा—"तुम क्यों रो रहे हो?"

सूर्य-किरणों को चूमती फिरती हुई तितली ने भी पूछा—"सचमुच तुम क्यो रो रहे हो?"

अति मन्द सुकुमार स्वर में मधुमक्खी ने भी कहा–"सचमुच तुम रोते क्यों हो?"

बुलबुल बोल उठी—"वह लाल गुलाब के फूल के लिये रो रहा है!"

सब-के-सब आश्चर्य कहने लगे—"महज लाल गुलाब ही के लिये? हरे राम! हरे राम!!"

सब-के-सब हँस पड़े। किन्तु बुलबुल उस युवक की वेदना का रहस्य समझती थी। वह चुपचाप पल्लवों की ओट में छिपी बैठी रही। वह प्रेम के रहस्य-चिन्तन में डूबी हुई थी।

२

एकाएक बुलबुल ने अपने सुन्दर पंखों को फैलाया, और फुर से उड़ चली! कुंजों और बगीचों को पार करती हुई वह कहाँ निकल गई! लहलही घासों से भरे मैदान के बीच में गुलाब का एक पेड़ था, उससे जाकर बोली—"मुझे एक लाल फूल दो, मैं तुम्हे अपना मधुर गान सुनाऊँगी!"

गुलाब के वृक्ष ने अपना सिर हिलाते हुए कहा—"मेरे फूल तो समुद्र के फेन के समान—पहाड़ी बर्फ के समान—सफेद हैं। किन्तु मेरे एक भाई के पास जाओ, वही तुम्हे मनचाही चीज देगा!"

बुलबुल वहाँ उड़कर गई। उसी तरह याचना की। उस गुलाब के वृक्ष ने भी सिर हिलाकर कहा—"मेरे फूल तो सुन्दरी रमणी के सुनहले बालों के समान पीले हैं—प्यारी सूरजमुखी के सदृश हैं; तुम मेरे उस भाई के पास जाओ, जो उस युवक की खिड़की के सामने खड़ा है; वह तुम्हें लाल फूल देगा।"

बुलबुल वहाँ भी उड़कर पहुँची। उन्हीं शब्दों में याचना की। उस गुलाब के वृक्ष ने कहा—"मेरे फूल तो लाल हैं—उतने ही लाल, जितने हंस के चरण-तल—ठीक मूँगे के समान; किन्तु शीत-काल ने मेरी नसों को सिकुड़ा दिया है, पाले ने मेरी कलियों को कुम्हला दिया है, हवा के तुन्द झोकों ने मेरी डालों को तोड़-मरोड़ डाला है; इसलिये इस साल एक भी फूल नहीं खिला!"

बुलबुल बोली—"मैं सिर्फ एक ही लाल फूल चाहती हूँ—सिर्फ एक! क्या किसी उपाय से मैं उसे पा नहीं सकती?"

गुलाब का वृक्ष बोला—"एक उपाय है; पर वह इतना भयंकर है कि मैं तुमसे कहने का साहस नहीं कर सकता।"

बुलबुल बोली—"कहो, मै डरूँगी नहीं।"

गुलाब के वृक्ष ने कहा—"यदि तुम लाल फूल चाहती हो, तो खुली चाँदनी में अपने मधुरतम प्रेम-संगीत से उसकी सृष्टि करो और अपने हृदय के रक्त से उसे रँगो। अपनी छाती में मेरे काँटे को चुभाकर मेरे पास गाओ। रात-भर गाना पड़ेगा। मेरा काँटा जब तुम्हारी छाती को छेदकर पार हो जायगा, तब तुम्हारे हृदय का रक्त मेरी नसों में भिनकर मुझे संजीवनी शक्ति प्रदान करेगा।"

बुलबुल ने आह भरकर कहा—"लाल गुलाब के लिये जीवन-दान देना तो बहुत बड़ा मूल्य चुकाना है। जीवन बहुत ही प्रिय वस्तु है। यद्यपि हरे-भरे जंगल में बैठकर सुवर्ण-रथारूढ़ सूर्यदेव के दर्शन करना बड़ा सुखकर है—मुक्ता-दल-मंडित रथ पर आसीन चन्द्रदेव के दर्शन करना भी बड़ा ही मनोहर है—पहाड़ की तराई के खेतों में तीसी के फूलों की श्यामलता और रजनी-गन्धा की मस्तानी सुगन्ध भी अत्यन्त मुग्धकारिणी होती है, तथापि जीवन से 'प्रेम' कहीं बढ़कर है, और फिर मनुष्य-हृदय के साथ पक्षी के हृदय की समता ही क्या ?"

३

वह पंख फैलाकर उड़ चली। कुंजों और क्यारियों पर अपनी छोटी-सी छाया डालती हुई वहाँ पहुँची, जहाँ वह युवक अबतक उसी भाँति घास के गलीचे पर पड़ा था। उसके शोभन नेत्रों के आँसू अभी सूखे न थे!

बुलबुल बोल उठी—"ऐ युवक! उठो, प्रसन्न हो, लाल गुलाब तुम्हे मिलेगा। मै चाँदनी रात में अपने प्रेम-संगीत से उसकी सृष्टि कर अपने हृदय-रक्त से उसे रंजित करूँगी। तुमसे मैं सिर्फ इतना ही चाहती हूँ कि तुम सच्चे प्रेमी बने रहो; क्योंकि 'प्रेम' दर्शन-शास्त्र से भी गहन है—सर्वशक्तिमान् से भी प्रबल है। उसके पंख अग्नि-शिखा के समान दीप्तिमान हैं। उसका शरीर प्रदीप्त ज्वाला के सदृश तेजस्वी है। उसके होंठ शहद की तरह मीठे और उसकी साँस मलय-पवन की भाँति सुरभिपूर्ण!"

युवक छात्र चौंक उठा। बड़े ध्यान से सुनने लगा। पर बुलबुल की बोली समझ न सका। केवल किताबों में लिखी बातों को ही वह समझ सकता था। किन्तु बुलबुल की बातों को वह अशोक-वृक्ष समझ गया, जिसकी डालों पर बुलबुल ने बसेरा लिया था। वह बुलबुल को बहुत प्यार करता था। शोक से उसके पत्ते मुरझा गये। उसने क्षीण स्वर में कहा—"ऐ बुलबुल! अब अपना अन्तिम संगीत सुनाओ, तुम्हारे चले जाने पर फिर तो सूना हो ही जायगा!"

बुलबुल गाने लगी। जैसे चाँदी की झारी से निर्मल जल का सोता झर रहा हो, वैसे उसके कंठ से रस की धार फूट चली। जब वह गा चुकी, तब वह युवक उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी जेब से नोट-बुक और पेन्सिल निकाली। कुंजों के बीच से टहलता हुआ वह मन-ही-मन कहने लगा—"इस बुलबुल की आकृति तो बड़ी सुन्दर है; पर क्या इसमें कुछ हृदय भी है? मुझे तो इसमें शंका है। वास्तव में यह उन चित्रकारों के समान है, जिसमें एक विशेष शैली तो होती है; पर सहृदयता नहीं! यह दूसरो के लिये आत्मत्याग नहीं कर सकती। यह केवल गाने की धुन में मस्त रहती है। प्रायः सभी कलाएँ स्वार्थपरायण हुआ करती हैं! फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इसका कंठ बड़ा मधुर है। यह कैसी दयनीय बात है कि ऐसे सरस-हृदय प्राणी भी कोई वास्तविक हित का काम नहीं कर सकते।"

यह कहते-कहते अपने कमरे में जाकर लेट गया। चुपचाप पड़े-पड़े प्रेम की चिन्ता में निमग्न होकर सो गया। रात को

जब आकाश में चन्द्रमा उदित हुआ, तब बुलबुल उड़कर उस गुलाब के वृक्ष के पास गई—उसके काँटे से अपनी छाती भिड़ा दी और सारी रात गाती रही। शीतल शुभ्र चन्द्रमा झुककर उसके गान पर कान दिये रहा। वह सारी रैन गाती ही रही। काँटा चुभता ही चला गया। जीवन-रक्त निकल चला।"

४

पहली बार उसने एक बालक और एक बालिका के हृदय में प्रेम की उत्पत्ति का संगीत सुनाया। बस, उस पुष्पवृक्ष की चोटीवाली फुनगी पर एक अपूर्व गुलाब खिल उठा! ज्यों-ज्यों संगीत-लहरी उठती गई, त्यों-त्यो उसमें दल-के-दल उभड़ते चले गये। आरम्भ में वह फीका था, जैसे नदी के ऊपर छाया हुआ कुहरा—जैसे उषा का पदार्पण; किन्तु वह चमकीला भी था—जैसा प्रभात का आलोक। वह वैसा ही सुन्दर था, जैसा रजत-दर्पण में पाटलि-पुष्प का प्रतिबिम्ब—स्फटिक-स्वच्छ पुष्करिणी में अभिनव कमल की कान्ति!

वह गुलाब का पेड़ अचानक चीख़ उठा—"ऐ छोटी बुलबुल! ज़रा अपनी छाती को और सटाकर दबाओ, मेरे काँटे में गहरा चुभाओ; नहीं तो फूल के तैयार होने से पहले ही भोर हो जायगा।"

बुलबुल ने काँटे की नोक पर अपनी छाती को खूब जोर से दबाया। इससे उसका संगीत-स्वर अधिकाधिक उच्च हो चला। उस समय वह युवक-युवती के हृदय में वासना की उत्पत्ति का गान अलाप रही थी। देखते-ही-देखते कोमल पत्तियों

के बीच में सुकुमारि लाली-सी दौड़ आई—ठीक वैसी ही लाली, जैसी पति-चुम्बित नई दुलहिन के मृदुल कपोलों पर दौड़ आती है। किन्तु, हाय ! अभी तक काँटा बुलबुल के हृदय तक नहीं पहुँचा था ! इसलिये उस नव-जात गुलाब का अन्तस्तल अभी तक श्वेत ही था; क्योंकि केवल बुलबुल के हृदय का रक्त ही गुलाब के अन्तस्तल को रंजित कर सकता है !

पुनः वह गुलाब का वृक्ष चीख उठा—"ऐ प्यारी बुलबुल ! काँटे पर अभी और अपनी छाती दबाओ, अच्छी तरह चिपका-कर दबाओ; नहीं तो फूल के खिलने से पहले ही भोर हो जायगा।"

बुलबुल ने अपनी छाती को काँटे पर इतने जोर से दबाया कि काँटा कलेजे तक चुभ गया—एक तीक्ष्ण पीड़ा उसकी नसों मे व्याप्त हो गई। इधर वेदना क्षण-क्षण तीव्र होती गई, उधर संगीत-स्वर का उच्चतर आरोहरण होता चला गया। वह उस प्रेम की तान अलाप रही थी, जिसे मृत्यु ही पूर्ण एवं पवित्र करती है और जो चिताग्नि की ज्वालाओं में भी नहीं जलता !

उसी समय वह अपूर्व गुलाब लाल हो उठा—जैसे प्राची-दिशा का नवोदित सूर्य ! पुष्पदलों के अंचल तो लाल थे ही, पुष्प का अन्तरंग भी रत्न-कान्ति से रंजित था।

बुलबुल का स्वर मन्द हो चला। छटपटाने से पंख फड़-फड़ करने लगे। चल-चित्र-सा विश्व का दृश्य उसकी आँखों के सामने नाच उठा। उसका कंठ-स्वर धीमा पड़ता चला गया—जान पड़ा, गला रुँध रहा है। तब उसने संगीत की अन्तिम लहर छोड़ी, जिससे प्लावित होकर उज्ज्वल चन्द्रमा उषा-मिलन

की बात भूलकर आकाश में भटकता फिरा। जब उस लाल गुलाब ने भी वह अन्तिम संगीत-लहरी सुनी, तब आन्तरिक आनन्द से आन्दोलित होकर, शीतल-मन्द प्रभात-समीर में, वह अपने मृदुल दलों का दुकूल फहराने लगा। डहडही लताओं और रंगीन फूलों से ढँकी हुई पर्वत-गुफाओं तक वह संगीत-लहरी जा पहुँची, जहाँ उसके गूँजने से सोये हुए चरवाहे अपनी सुख-निद्रा से जग पड़े। इतना ही नहीं, वह संगीत-लहरी नदी के प्रवाह पर नाचती हुई समुद्र तक प्रेम-सन्देश ले पहुँची।

गुलाब का वृक्ष बोल उठा—"देखो, देखो, फूल तैयार हो गया !!"

अब कौन देखे? कोई उत्तर न मिला!

घनी घास पर बुलबुल मरी पड़ी थी—काँटा कलेजे तक चुभा हुआ था!

५

दूसरे दिन दुपहरी में खिड़की खोलकर वह युवक बाहर निकला। बड़े आनन्दोल्लास के साथ वह चिल्ला उठा—"यह है लाल गुलाब का फूल! वाह रे भाग्य! ऐसा सुन्दर फूल तो मैंने अपने जीवन-भर में नहीं देखा!"

लपककर उसने फूल तोड़ लिया। फूल लेकर दौड़ता हुआ प्रोफेसर के बँगले पर पहुँचा। प्रोफेसर की लड़की बरामदे मे कुर्सी पर बैठी हुई थी। उसका प्यारा कुत्ता उसके पैरों पर लोट रहा था।

युवक ने उसके पास पहुँचते ही कहा—"तुमने लाल गुलाब पाकर मेरे साथ नाचने का वादा किया था। देखो, यह है संसार का सर्वश्रेष्ठ लाल गुलाब! आज रात को अपने वक्षःस्थल पर इसे धारण करके जब तुम मेरे साथ नाचोगी, तब यह बतायेगा कि मै तुम्हें कितना प्यार करता हूँ।"

लड़की ने झिड़क दिया। कहा—"मेरे सुन्दर कपड़ों के साथ यह नहीं खिलेगा। इसके सिवा एक और बात है—राजकुमार ने मेरे लिये कुछ सच्चे हीरे-जवाहर भेजे है। फूलों से हीरे-जवाहर कहीं बेशकीमत होते हैं!"

युवक ने क्रोध-भरी झुँझलाहट के साथ कहा—"तुम बड़ी कृतघ्न हो! मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये यह फूल लेकर आया था।"

इतना कहकर उसने फूल को सड़क पर फेंक दिया। वह पनाले में जा गिरा। उसी समय उसपर से गाड़ी का एक पहिया निकल गया!

लड़की बोली—"मैं कृतघ्न हूँ? मैंने तुमसे क्या कहा था? तुम बड़े गुस्ताख हो। तुम होते कौन हो? तुम तो महज़ एक विद्यार्थी हो, और वह है राजकुमार! तुम्हारे जूतों पर तो चाँदी के भी बकलस नही हैं!"

वह उठकर कमरे के अन्दर चली गई।

युवक भुनभुनाता हुआ घर चला—"उफ़!! प्रेम भी कैसा तुच्छ पदार्थ है। यह तो तर्कशास्त्र का आधा भी उपयोगी नहीं है; क्योंकि इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता! असम्भव बातों की चर्चा और असत्य बातों पर विश्वास दिलाने के समान यह

सर्वथा निष्प्रयोजन है। वस्तुतः यह नितान्त अव्यावहारिक है। और अब चूँकि इस युग में व्यावहारिकता ही सब-कुछ है, इसलिये मैं प्रेम-पन्थ से मुँह मोड़कर दर्शन शास्त्र और अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त होऊँगा।"

यही सब सोचता हुआ वह घर पहुँचा और अपने कमरे में बैठकर किताब पढ़ने लगा। ❀

* 'आस्कर-वाइल्ड' की एक कहानी।